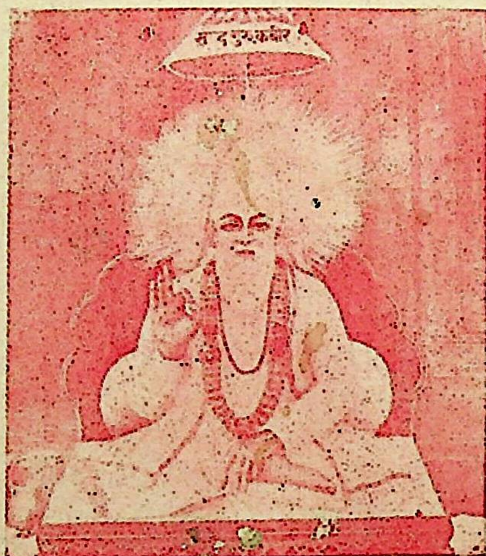
3·5

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

स्वस्वरूपनिष्ठ महात्मा स्वामी श्री विजय साहब
द्वारा संकलित

बीजक वित्त सारांश



"मोको कहाँ ढूँढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास में।"
श्री सद्गुरु कबीर साहब ॥

भूमिका लेखक
संपादक एवं संशोधक
जगदीशदास शास्त्री
साहित्याचार्य, बी० ए० एल-एल० बी०

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

स्वस्वरूपनिष्ठ महात्मा श्री विजय साहब द्वारा संकलित

बीजक वित्त सारांश

भूमिका लेखक
सम्पादक एवं संशोधक
जगदीश दास शास्त्री
साहित्याचार्य, बी. ए., एल-एल. बी.

प्रथमावृत्ति १०००
वसन्त पञ्चमी वि० सं० २०३८
मूल्य ५) रु० मात्र

प्रकाशक

श्री रामेश्वरदास जी

मूल्य—पाँच रुपये मात्र।

पुस्तक प्राप्ति-स्थान—

(१) श्री रामेश्वर दास जी
मु० पो०—विष्णुपुर (विजयपुर)
थाना—परिहार
जिला—सीतामढ़ी (बिहार)

(२) श्री जगदीश दास जी शास्त्री
श्री कबीर कीर्ति मन्दिर काशी
सी. २६।१ सन्त कबीर रोड
वाराणसी (उ० प्र०)
२२१००१

मुद्रक
शीतला प्रेस
वाराणसी—१

भूमिका

अकह अगम अगोचर तत्व को वाणी का विषय बनाना कितना कठिन है यह उस तत्व के विशेषणों से ही ज्ञात हो जाता है। इस परम गुप्त धन का विनिमय करना, जिस पर रहस्य का अछेद्य अभेद्य आवरण पड़ा; हो जिसे हटाकर उसके अव्यक्त रूप को व्यक्त करना, सामान्योत्तम प्रतिभा का कार्य नहीं है। वहाँ केवल उसी नवनवोन्मेषशालिनी उत्तमोत्तम प्रतिभा को ही गति हो सकती है। कबीर साहब ने अपनी अलौकिक दिव्यातिदिव्य प्रतिभा से उक्त अव्यक्त तत्व को व्यक्त किया जिसके लिए साहब को सैन-बैन को अपनाना पड़ा। साहब ने सम्पूर्ण मानव जाति के परम कल्याणार्थ उस रहस्यमय अकह तत्व का विवेचन किया। सद्गुरु कबीर साहब का अनुपम ज्ञान जिसके हृदय में एक बार यदि पैठ जाय तो संशय फिर उसके पास फटक भी नहीं सकता। उसी संशय हरण मोह निवारण, तम-अन्धकार अपसारण करनेवाले ज्ञान के खजाने की कुंजी है "बीजक"। जिसे राह का ज्ञान किंचित् भी यदि है तो बीजक उसे आगे का दिशा निर्देश करता है। यह तो मील के पत्थर के समान गन्तव्य पथ का संकेतक है। लेकिन किसी भी प्रकार का प्रारंभिक ज्ञान बिना गुरु के हो ही नहीं सकता। और प्रारंभिक ज्ञान के बाद विशेष ज्ञान या विज्ञान के लिए तो पूर्ण गुरु की आवश्यकता तो है ही। इसीलिए गुरु की भेंट कठिनता से होती है। उसमें भी अभ्यासी पूण गुरु का मिलना तो बहुत ही कठिन है। श्री धनी धर्मदास जी साहब को इसीलिए कहना पड़ा कि—

ढूंढ ढूंढ़ मैं हारा सतगुरु मिला न दरस तुम्हारा।

निखिल तत्व वेत्ता पूर्ण सद्गुरु की मुलाकात पूर्व संस्कारों के प्रबल होने पर ही होती है। मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूं जो दृढ़ लगनशील तो हैं लेकिन सद्गुरु की प्राप्ति न होने से अपने मनमाने अभ्यास करते हुए असफल होते हैं तथा अभ्यास के प्रति श्रद्धाहीन हो जाते हैं। इसलिए सद्ज्ञान

सहज योग का अभ्यास भी योग्य सदगुरु के सान्निध्य में ही करना चाहिये क्यों कि सदगुरु के अभाव में अभ्यासु अहंकारी होकर मार्ग से भटक सकता है। तथा वह अपने आगे किसी को भी कुछ भी नहीं समझता है। ऐसे अभिमानी व्यक्ति को अभ्यास के सन्मार्ग से च्युत ही समझना चाहिये।

जव व्यक्ति के संस्कार प्रवल होते हैं तो उसके मन में ज्ञान की प्यास पैदा होती है और वह सद्गुरु की खोज करने लगता है। किन्तु ऐसा ज्ञान का पिपासु भी ढोंगी गुरुवा लोगों के जाल में फँस सकता है। क्यों कि उसे सद्गुरु की पहिचान तो होती नहीं और वह झूठे आडम्बर करने वाले अहंकारी सन्मार्ग-च्युत लोगों के चक्कर में पड़कर वास्तविक सद्ज्ञान से पराङ्मुख हो जाता है। इसीलिए सदगुरु कवीर साहव ने ऐसे लोगों से बचने लिए वार-वार चेतावनी दी है। तथा उनके रंग-ढंग के विषय 'वीजक' में जगह जगह वर्णन किया है। जिससे अभ्यासु व्यक्ति उन्हें पहिचान कर उनसे वचे तथा सच्चे सद्गुरु, पूर्ण गुरु की ही शरण में जाये।

सच्चे सद्गुरु की पहिचान भी साहव ने वता दी कि जो नीर और क्षीर की अलग अलग पहिचान करादे वही तत्व द्रष्टा सद्गुरु है। जो अज्ञान के परदे का निवारण कर अनन्त अन्तश्चक्षुओं को खोलकर अनन्त का दर्शन करा देता है और तव शिष्य कहने लगता है कि—

आपेहि गुरु कृपा कछु कीन्हा, निर्गुण अलख लखाई।
सहज समाधि उन्मुनि जागे सहज मिले रघुराई॥

यह सदगुरु की कृपा का ही फल है कि शिष्य अलख और अकह का बोध प्राप्त कर लेता है।

इसे हम एक प्रतीक कथा से समझ सकते हैं यह तो आपको पहले ही बता दिया गया कि संस्कार प्रबल होने से व्यक्ति के अन्तःकरण में ज्ञान की प्रवल प्यास जग जाती है और वह उस प्यास को बुझाने के लिए प्रयत्नशील होता है।

एक गुरुकुल में पाँच हजार विद्यार्थी विद्या ग्रहण करते थे। गुरुकुल में सब प्रकार की विद्या का प्रवन्ध था। वहाँ दर्शन शास्त्र का एक विचक्षण विद्यार्थी

था। उसकी ज्ञान की तीव्र पिपासा थी और वह सत्य का वास्तविक खोजी था। उसने अनेक विद्वानों के पास जाकर विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन किया किन्तु हर जगह सत्य का उसने आवृत ही पाया। जिससे उसे शान्ति नहीं मिली क्योंकि वह तो सत्य के आवरण रहित रूप का साक्षात्कार करना चाहता था। जब उसे कहीं भी नग्न सत्य का दर्शन नहीं हो सका, तब वह किंचित् हताश होकर, रात के सुनसान वातावरण में गुरुकुल के मन्दिर में अकेला बैठकर सोच रहा था कि आज यदि मुझे सत्य का साक्षात्कार नहीं होगा तो मैं प्राण यहीं छोड़ दूँगा। इसी दृढ़ निश्चय के साथ वह बैठा था। अर्धरात्रि के समय भी जब कोई चमत्कार नहीं हुआ तब उसने सामने शिला पर अपना शिर पटकना चाहा उसी समय अचानक किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। उसने घूम कर देखा तो सामने एक तपः पूत, जटाजूट योगी खड़ा था जिसकी नेत्रों में विलक्षण चमक थी। योगी ने उसे वहाँ एकान्त में बैठने का कारण पूछा। उस जिज्ञासु ने सब यथा तथ्य सुनाया। योगी ने कहा—"देखो सत्य सदैव परदे के भीतर ही देखा जाता है।" जिज्ञासु ने कहा—"नहीं! मैं नग्न सत्य का दर्शन करना चाहता हूँ। उसके लिए मुझे जो कुछ भी करना पड़े मंजूर है।" योगी ने कहा—"ठीक है। चलो मै तुम्हें सत्य का साक्षात्कार करता हूँ।" और जैसे ही योगी ने उसके शिर पर हाथ रखा उसकी आँखे बन्द हो गईं। वह देखने लगा कि वह योगी के साथ एक अनोखी यात्रा पर निकला हुआ है। उस विलक्षण यात्रा में उसने अपूर्व दृश्य देखे। अन्त में एक स्थान पर योगी ने रुक कर सामने निर्देश करते हुए कहा—"देखो, जो सामने से झीना-झीना प्रकाश आ रहा है वही सत्य का प्रकाश है, लेकिन उस पर अनेक पर्दे हैं जिससे उसका प्रकाश पूर्ण रूप से नहीं फैल पा रहा है और तुम नग्न सत्य का दर्शन नहीं कर पा रहे हो। तुम्हें इस पर पड़े पर्दों को हटाना होगा किन्तु तुम सभी पर्दे एक साथ नहीं हटा सकते। क्रमशः एक-एक पर्दा हटाओगे और एक वर्ष में एक ही पर्दा हटा सकते हो।"

उस सत्य के दर्शनार्थी को सभी शर्तें मंजूर थी। उसने आगे बढ़कर एक पर्दा खींच लिया एक पर्दे के हट जाने से प्रकाश में कुछ वृद्धि हो गई। 'योग'

उस जिज्ञासु को वापस उसी मन्दिर में ले आया और बोला कि "अगले वर्ष इसी दिन इसी समय तुम यहाँ आओगे मैं तुम्हें पुनः दूसरा पर्दा फाड़ने के लिए ले चलूँगा। लेकिन मैं बता नहीं सकता कि उस पर कितने पर्दे पड़े हैं और तुम्हें कितना समय लगेगा।"

जैसे ही योगी ने उसके कन्धे पर से हाथ उठाया उसने आँखे खोली और योगी को नजरों से ओझल होते देखता रहा। वह उठकर चला आया। अब उसे एक मात्र प्रतीक्षा थी कब वह दिन आता है और कब मैं सत्य पर का एक पर्दा और उठा लेता हूँ उसने सांसारिक कार्यों में रुचि लेना छोड़ दिया। जीवन के लिए अत्यावश्यक कार्य केवल करता था। दूसरे वर्ष वह समय आया। उसी स्थान पर योगी के साथ जाकर उसने पुनः एक पर्दा फाड़ा। इस प्रकार वर्ष पर वर्ष निकलते गये एक-एक पर्दा वह फाड़ता गया। उसकी अवस्था अस्सी साल की हो गई। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं। फिर वह दिन भी आ गया जब उसे अन्तिम पर्दा फाड़ना था। योगी ने चेतावनी दी—"देखो अभी भी विचार करो यदि तुम्हें सांसारिक कामनाओं की पूर्ति करना है तो मैं कर दूँगा लेकिन यह पर्दा फाड़ लेने पर क्या होगा यह मैं तुम्हें नहीं बता सकता"। जिज्ञासु पर्दा फाड़ने के लिए बेताब था। उसने कहा—"मैं यह अन्तिम पर्दा भी अवश्य फाडूँगा।" यह कहकर उसने वह अन्तिम पर्दा भी फाड़ लिया।.............
उसी क्षण उसकी दृष्टि-कान-जिह्वा कुछ देखने, सुनने, कहने में असमर्थ हो गई। "जो गूँगे गुड़ खाया मन ही मन मुसकाये।" की स्थिति आ गई। जिस स्थिति का वर्णन सद्गुरु कबीर साहब ने किया है—'मन मस्त हुआ तब क्या बोलै।" सम्पूर्ण कथा का आशय यही है कि हमारे विभिन्न कुसंस्कारों के आवरण से हमारी अन्तरात्मा का प्रकाश अभिव्यक्त नहीं हो पा रहा है। उन आवरणों को हटाने में हमें सद्गुरु की सहायता की परमावश्यकता है। उन्हें हटाने में कितना समय लगेगा कहा नहीं जा सकता। बहुत अधिक समय भी लग सकता है। थोड़े समय में भी आवरण हट कर आत्मसाक्षात्कार हो सकता है। और आत्म साक्षात्कार के बाद इस संसार में कुछ भी देखने सुनने कहने लायक नहीं रह जाता। अर्थात् जिज्ञासु कहने लगता है "कृतं कृत्यं

प्राप्तं प्रापणीयम् ।" अर्थात् जो कुछ करने लायक था कर लिया। जो पाने योग्य था, पा लिया। अब संसार में पाने योग्य कुछ भी नहीं बचा। यह सब सद्गुरु की कृपा से ही सम्भव हो सकता है—

आपे ही गुरु कृपा कछु कीन्हा, निर्गुण अलख लखाई।
सहज समाधि उन्मुनि जागे, सहज मिले रघुराई॥

आत्मा ही एक मात्र तत्व है जिसे जानने के बाद सब कुछ जाना जाता है—

ज्ञाते तु कस्मिन् विदितं जगत् स्यात्।

अर्थात् किसे जानने के बाद सारा संसार जाना जाता है? व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है? वह तत्व है आत्मा। वह धन जिसे पाने के बाद सब कुछ पाया जाता है अर्थात् पाने योग्य संसार में कुछ भी शेष नहीं रहता, वह है आत्म धन और बीजक है उस धन को पाने का ढंग बनाने वाला संदेश—

बीजक कहिये साख धन, धन का कहु संदेश।
आतम धन जिहि ठौर है, वचन कबीर उपदेश॥

सद्गुरु कबीर साहब का "बीजक" यही आत्म धन की तिजोरी (जो कि नम्बरों को एक विशिष्ट क्रम में लाने से खुलती है) को खोलने का विवरण प्रस्तुत करता है। किन्तु इस सैन-बैन पूर्ण वाणी को सद्गुरु के सांनिध्य के विना भली भांति जाना नहीं जा सकता। आज कबीर साहब के बीजक पर अनेक टीकाएँ उपलब्ध है किन्तु इसके बावजूद बीजक आज भी दुर्बोध्य है। वह कुंजी विरलों के ही हाथ लग सकी है।

महात्माओं ने कहने का बहुत प्रयास किया है किन्तु अकह को कहने के लिए सैन-बैन का ही सहारा लेना पड़ता है। जो सैन-बैन समझते हैं वे कुछ प्राप्त कर लेते हैं।

महात्मा श्री विजय साहब एक अभ्यास परायण महात्मा रहे। उन्होंने इस लघु ग्रन्थ में बहुत कुछ कहने का प्रयत्न किया है। प्रथम प्रकरण—मूल तत्व में जीव ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन एवं आत्म ज्ञान की प्राप्ति ही वर्णित है। बाद के कुछ प्रकरणों में सृष्टि-कर्ता-माया-काल आदि का वर्णन है। प्रकरण ७ से आत्म ज्ञान होने में बाधक तत्वों का विवेचन किया गया है। इसी सन्दर्भ

में मुस्लिम-जैन-तीर्थव्रत-मूर्तिवाद आदि का वर्णन भी हुआ है। पश्चात् कर्ता-लोक-नाम-भक्ति योग-ज्ञान आदि का वर्णन कर इस विषय में प्रचलित गलत धारणाओं का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार आत्म ज्ञान के साधन शम-दम-वैराग-श्रद्धा मुमुक्षुता का वर्णन कर जिज्ञासु को गुरुवा लोगों के प्रपंच से बचने के लिए चेतावनी दी है। पश्चात् सत्संग, सप्त-भूमिका सहज योग आदि का वर्णन कर सत्य-नाम-भक्ति एवं पुरुषार्थ का प्रतिपादन किया है अन्त में ज्ञान का प्रभाव वर्णित है। साथ ही साथ शब्दार्थ सहित ज्ञानयोग विषयक तीन भजनों को देकर ग्रन्थ की उपादेयता में वृद्धि की गई है।

प्रत्येक प्रकरण में महात्मा स्वामी विजय साहब की विवेक दृष्टि की झलक मिलती है। श्री साहब जी वेदान्त के अच्छे मर्मज्ञ एवं साधन सम्पन्न महापुरुष होने से ग्रन्थ की महिमा और बढ़ जाती है।

इस ग्रन्थ में रमैनी-शब्द-साखियों का क्रम पूज्य पाद श्री स्वामी हनुमान साहब षट्शास्त्री जी के बीजक के अनुसार रखा गया है। जिससे अन्य प्रकाशित बीजक से कुछ क्रम में भिन्नता है।

इस लघु-ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे प्राप्त हुई थी जिनमें एक प्रतिलिपि श्री महेन्द्र नामक छात्र द्वारा की हुई थी तथा दूसरी श्री स्वामी अखिलेश्वरानन्दजी शास्त्री साहब द्वारा की हुई थी। प्रथम प्रतिलिपि ही संशोधन के पश्चात् प्रेस में दी गई थी। वही ग्रन्थ के रूप में आपके समक्ष है। मुझे श्री रामेश्वरदास जी ने जब इस ग्रन्थ को छापने के विषय में कहा तब अनेक कार्यों के होते हुए भी मैंने इसका सम्पादन करना अपना सौभाग्य समझा। अन्त में अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थना करते हुए मैं यही कहूँगा।

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः॥

सतां विनयावतः
जगदीशदास शास्त्री
साहित्याचार्य बी० ए० एल-एल० बी०



श्री १०८ श्री स्वामी विजय साहब जी

सेवा में—सन्त श्री रामेश्वरदास जी

-: विषय-सूची :-

॥ दो शब्द ॥

कबीर साहब एक मानवतावादी सन्त थे। उनका प्राकट्य उस समय हुआ था जबकि मुसलमानों का अत्याचार पराकाष्ठा पर था। साधारण जनता में भी परस्पर वैमनस्य का समुद्र उछालें मार रहा था। हिन्दू तथा मुसलमानों की साम्प्रदायिक द्वेषाग्नि से सारा संसार जल रहा था। ऐसे घोर संकट काल में सृष्टि के नियमानुसार एक ऐसे महान् पुरुष का आविर्भाव होना आवश्यक था।

यथा—"जब-जब लोप धर्म का होई। महापुरुष तब प्रगटे कोई॥ १॥
दै उपदेश द्वन्द्व सब नाशे। सत्य ज्ञान जग माँहि प्रकाशे॥ २॥

इस प्रकार कबीर साहेब ने अपने आत्मबल से उन अत्याचारियों को शान्त कर हिन्दू और मुसलमान दोनों की काल्पनिक मान्यताओं में दोष दिखाते हुए समत्व भाव का उपदेश किया। स्वरूप बोध के लिए बीजक नामक ग्रन्थ की रचना की। अब तक उस पर अनेक टीकाएँ हो चुकी हैं। किन्तु हमने प्रातः स्मरणीय पूज्य श्री स्वामी हनुमान दास जी साहेब की टीका से सहायता लेकर साठ प्रकरणों में 'बीजक वित्त' नामक ग्रन्थ की रचना की जो अभी अमुद्रित है उसका ही सारांश लेकर यह "बीजक वित्त सारांश" नामक लघु ग्रन्थ रचा गया है। इसमें सभी विपर्यय शब्द छोड़ दिये गये हैं, इन सभी का भाव इनके अन्तर्गत ही समझना ही चाहिये। अपने चित्त की सन्तुष्टि के लिये यह ग्रन्थ रचा गया है। यदि इससे अन्य सन्त भी लाभ उठा सकें तो मेरा अहोभाग्य है।

सभी महानुभावों का—
विजयदास

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

॥ मंगलाचरण ॥

सवैया

कोउ शेष महेश रमेश गणेश सुरेश दिनेश निशेष गिरीशा।
देवी औ देव नदी तरु भूत औ प्रेत को मानत है जगदीशा॥
सब लोग इन्हें मन वांछित हेत सदा कर जोर नवावत शीशा।
सबै भ्रम नाश के ज्ञान लखाय सो है गुरुदेव विजयकर ईशा॥

साखी

बीजक अगम समुद्र है, भरा रतन भण्डार।
ताको पाने हेत मन, पैठि रहुँ मझधार॥ १॥
सतगुरु पदरज शीश धरि, कोटि-कोटि प्रणाम।
उनकी कृपा कटाक्ष ते, पूरण हो मम काम॥ २॥



॥ वस्तु निर्देश रूप मंगलाचरण ॥

॥ रमैनी ॥

जीव रूप एक अंतरवासा । अन्तर ज्योति कीन्ह प्रकाशा ॥

अर्थ--सबके हृदय में स्थित जीव एकरूप अर्थात् अखण्ड है । वह हृदय स्थित चेतन अपनी सत्ता स्फूर्ति से सबको प्रकाशित कर रहा है ।

॥ बीजक महत्व के साथ अनुबंध चतुष्टय ॥

॥ साखी ॥

बीजक बतावे वित्त को, जो वित्त गुप्ता होय ।
शब्द बतावे जीव को, बूझे विरला कोय ॥र० ३८॥

बीजक = गुप्त धन को बताने वाला ग्रन्थ ।

१--अधिकारी = जन्म जन्मांतर का संस्कारी कोई उत्कट जिज्ञासु ।

२--संबंध = बीजक ग्रन्थ व आत्मधन का संबंध ।

३--विषय = शब्द, उपदेश जीव ब्रह्म की एकता ।

४--प्रयोजन = गुप्त वित्त, स्वस्वरूप की प्राप्ति ।

卐

॥ १ मूल तत्त्व ॥

परमार्थ दृष्टि से यह जीव-ब्रह्म, आत्मा, सत्, चित्, आनन्द, स्वयं प्रकाश, विभु, साक्षी, एक, अनंत, असंग, निर्विकार, निराकार, निराधार, निरवयव, निर्गुण, कूटस्थ, अद्वैत, अज, अज्ञेय, अवाच्य, अविनाशी आदि है। अविद्या के संयोग से ही यह जीवभाव को प्राप्त होकर सुख दुःख को भोगता है। किन्तु अनेक जन्मों के शुभ संस्कार संचित होने पर सद्गुरु के मिलने पर स्व स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। उपरोक्त सभी शब्दों का साहेब ने प्रयोग किया है—

ब्रह्म—सकल ब्रह्म महँ हंस कबीरा ॥ शब्द ३७ ॥ पुरण ब्रह्म कहां ते प्रगटे। शब्द ४८। पार ब्रह्म अविगति अविनाशी। शब्द ४१। आदि। जब उपजा ब्रह्मज्ञान। साखी ३०२ ॥

आत्मा—आतम राम पलक में विनशे। शब्द ५६। आतम मारि पखानहि पूजे। आतम खबरि न जाना। शब्द २२।

सत्—घट-घट है अविनाशी। र० ३३ की साखी। काल न खाय कल्प नहिं व्यापे। शब्द ४३ आदि।

चित्—जाग्रत रूपी जीव है। साखी २८। सहज समाना घट-घट बोले। शब्द ११ आदि।

आनन्द—सुख सिंधु निहार कबीर । र० ४८ । कहहि कबीर सो सदा सुखारी । शब्द ७६ इत्यादि ।

स्वयं प्रकाश—एक चेतु, दूजे चेतन हारा । शब्द ९४ ।

विभु—जहँ लगि जग महँ रूप उपानो सो सब रूप तुम्हारा । शब्द ५१ ॥ व्यापी एक सकल की ज्योती । विप्रम० ।

साक्षी—साखी आँखी ज्ञान की, समुझ देख मन माहि । बिन साखी संसार का झगड़ा छूटत नाहि । परि० ५० ।

एक—एक निरन्तर अन्तर नाहीं, ज्यों घट जल शशि झाई हो । कहरा १० ।

अनंत—राम गुण न्यारो न्यारो न्यारो । शब्द ७८ ।

असंग—कमल पत्र तरंग एक मांही । संगहि रहे लिप्त पै नाही । रमैनी ७४ ।

निर्विकार—हसा तूँ तो सुवरण वरण । साखी १४ । हंसा तूँ तो सबल था । साखी १५ । इत्यादि ।

निराकार—वरण हुँ कौन रूप औ रेखा । रमैनी ६ । ना वह वरण न रूपा । शब्द ११ ।

निराधार—निराधार अधार लै जानी । रमैनी ७४ ।

निरवयव—अक्षय— अक्षय पिंड बिहुना । शब्द १० ।

निर्गुण—भजिये निर्गुण राम को साखी २६८ ।

कूटस्थ—जहाँ धीर गम्भीर अति निश्चल, तहँ उठि मिलो कबीरा । शब्द ४१ ।

निष्क्रिय—ना वहाँ सृष्टि न सीर्जन हारा। शब्द १२। कर्म धर्म कछुओ नहि उहँवां। शब्द १२।

अज—आवो न जावो मरो नहिं जीवो। कहरा १०।

अज्ञेय—सुधि बिनु सहज ज्ञान बिनु ज्ञाता। शब्द १०।

अवाच्य—अविगति की गति का कहौं। रमैनी ७। तुम बुझहु अकथ कहानी। शब्द १९।

अद्वैत—तहाँ दूसरा नाहिं। साखी २६९। अद्वैत सिद्धि में साहेब श्रुति प्रमाण देते हैं—

'तत्त्वमसि'—तत्वमसि इनके उपदेशा। ई उपनिषद् कहे संदेशा। रमैनी ८॥ अर्थ—तत्-ईश्वर वाच्य। त्वं-जीव वाच्य।

असि--दोनों की एकता। दोनों की सर्वज्ञता व अल्पज्ञता उपाधि छोड़कर एक अखण्ड ब्रह्म का निश्चय। इनके--तत्व वेत्ता के।

उपनिषद—छान्दोग्य ६-८-७।

साखी— जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय।
छठी तुम्हारी हौं जगा, तूँ कहाँ चला बिगोय॥ १॥

यहाँ पर साहेब जीव के सुषुप्ति प्रलय व जन्म मरण के बीच के समय में गौण मुक्ति का दृष्टान्त देकर वास्तविक मुक्त स्वरूप का वर्णन करते हैं कि हे जीवों! पाँच तत्व से भिन्न छठवाँ तेरा चैतन्य स्वरूप है, तुम उसे विस्मरण कर कहाँ संसार प्रपंच में चले हो।

साखी—जो जिव जानहूं आपना, करहूं जीव को सार ।
जियरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी वार ॥१०॥

अर्थ---साहेब कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं ! यदि तुम अपनी चेतना को अखण्ड चेतन करके मानते हो तो इन जीवों को अविद्या आदि मलों से शुद्ध कर निर्मल करो क्योंकि परम प्रेम का विषय इस आत्मा का बोध अन्य शरीर से मिलना दुर्लभ है।

साखी---जाग्रत रूपी जीव है, शब्द सोहागा श्वेत ।
जलद बूँद जल कू कही, कहहिं कबीर कोइ देख ॥२५-२८

अर्थ—यह जीव चैतन्य स्वरूप है और शब्द रूप जड़ प्रकृति देखने में सुन्दर, किन्तु वस्तुतः सोहागा के समान गलाने वाली अर्थात् चेतन को आवरण करने वाली है (ज्ञान को ढकने वाली है) ।

साखी---पाँच तत्व के भीतरे, गुप्त वस्तु स्थान ।
बिरला मर्म पाइ हैं, गुरु के शब्द प्रमाण ॥२६-२७॥

अर्थ---पृथ्वी आदि पाँच तत्व अथवा अन्नमयादि पंच कोष से भिन्न गुप्त वस्तु हृदय में स्थित जीव है, परन्तु इसके भेद को कोइ विरले गुरु के परम भक्त ही पाते हैं ।

साखी—एक साधे सब साधिया, एक बिना सब जाय ।
उलटि जो सीचे मूल को, फूले फले अघाय ॥२७१.२७३॥

अर्थ—एक आत्म तत्व के सेवन करने से ही सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते है। उस एक के विना सभी साधन

व्यर्थ हैं, क्योंकि वृक्ष के मूल को सींचने से फल फूल की पूर्णता हो जाती है। डार पात के सींचने से मूल भी नष्ट होता है।

साखी — हृदया भीतर आरसी, मुख देखा नहीं जाय।
मुख तो तबही देखिहौ, जब दिल की दुविधा जाय ।२९।

अर्थ — सबके हृदय में बुद्धि रूपी आरसी मौजूद है, किन्तु आत्मा रूप मुख का अनुभव नहीं होता। इसका कारण जो संशय विपर्यय आदि हैं, वे दूर हो जाने पर ही आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

साखी — आप भुलावे आप में, आप न चीन्हे आप।
और होय तो पाइये, यहं तो आपे आप ॥५१॥

अर्थ — यह जीव अज्ञान से अपने आप में भुला है जिससे सच्चिदानन्द स्वरूप का अनुभव नहीं कर पाता। अगर अपने से भिन्न हो तो पाया भी जाय। किन्तु यह तो अपना आप स्वयं स्वरूप है।

कहरा १० — एक निरन्तर अन्तर नाहीं, ज्यों घट जल शशि झाँइ हो। एक समाना समुझव नाहीं, जरा मरण भ्रम जाई हो।

अर्थ — भेद रहित एक ही चेतन सर्वत्र परिपूर्ण है। इसमें किंचित भी भेद का अवकाश नहीं।

प्रश्न — अनेक क्यों प्रतीत हो रहा है ?

उत्तर — जैसे जल से भरे हुए घड़े के अन्दर चन्द्रमा का प्रतिबिंब पड़ता है उसी प्रकार शरीर रूपी घट के अतःकरण

रूपी जल में अखण्ड-एक चैतन्य ब्रह्म के अनेक जीव रूप प्रतिबिंब पड़ते हैं अज्ञानी जीव एक ही चेतन सब में समाया हुआ है इसे नहीं समझते हैं, जिससे आत्मा में प्रतीयमान जरा मरण का भ्रम दूर हो। समाना शब्द से कदाचित जिज्ञासु को ऐसा भ्रम न हो जाय कि एक समान चेतन जाति होते हुए अन्न के दाने के समान जीव भिन्न भिन्न ही है। अतः इन शब्दों को कहते हैं।

साखी एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबिर समाना वृक्ष में, तहाँ दूसरा नाहिं ॥२६९॥

अर्थ — एक ही समान चैतन्य ब्रह्माण्ड के सारे पदार्थों में समाया है और सकल ब्रह्माण्ड ब्रह्म के आश्रय स्थित है, जो विवेकी इस ज्ञान तत्व को जानता है उन विवेकियों की दृष्टि में कोई अन्य पदार्थ नहीं है।

साखी — एक ही ते अनन्त-अनन्त, अनन्त एक हो आया।
परिचय भया जो एक ते, सब एकहिं माहिं समाया ॥१३०।

अर्थ — एक ही विशिष्ट ब्रह्म से अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड हुआ तथा उस अनन्त ब्रह्माण्ड में एक ब्रह्म तत्व ही समाया है। उस ब्रह्म तत्व के ज्ञात हो जाने पर द्वैत की मिथ्या प्रतीति हो जाती है।

विशेषः — शुद्ध ब्रह्म के आश्रित होने से ही ब्रह्म से उद्भूत व लीन कहा गया है। वस्तुतः सारे ब्रह्माण्ड का मूल विशिष्ट ब्रह्म ही है।

साखी — कबीर का घर शिखर पर, जहाँ सिलहली गैल ।
पाँव न टिके पिपिलका, खल कन लादे बैल ॥३०-३३

कबीर.....आत्म तत्त्व की स्थिति माया से परे है । सिलहली गैल-संकीर्ण मार्ग (अति सूक्ष्मनिदिध्यासन) पांव......बहुत से सूक्ष्म बुद्धि वाले भी साधन से गिर जाते हैं । खल ......मूर्ख बैल के समान अहंकार का बोझ लादे कैसे पहुँच सकता है ।

साखी — जासो नाता आदि का, विसरी गया सो ठौर ॥
चौरासी के वश परे, कहत और के और ॥३४६-३५०

जासो......जिस ब्रह्म स्वरूप की सत्ता से जीव की स्थिति है । और के और = अखण्ड चैतन्य भाव छोड़कर परिच्छिन्न भाव का मानना ।

इसलिए — चित चंचलता छोड़ दे, माया ते मन फेर ।
जाही ते सब कुछ भया, ताहि न काहे हेर ॥ ३१३ ॥

जाही ते = जिस अखण्ड स्वरूप की सत्ता से ।

साखी — जाही के शर लागे, सोई जाने पीर ।
लागे तो भागे नहीं, सुख सिंधु निहार कबीर ॥ २०६८

शर = ज्ञान रूपी बाण । पीर = अनुभव । भागे नहीं = स्वरूप स्थिति से नहीं डिगता । सुख सिंधु = साधक ब्रह्मानन्द का अनुभव कर लेता है ।

रमैनी ७७--एके काल सकल संसारा । एक नाम है जगत पियारा ॥१॥ तिया पुरुष कुछ कहल न जाई । सर्व रूप

जग रहा समाई ॥२॥ रूप निरूप जाय नहि बोली। हल्का गरुवा जाय न तौली ॥३॥ भूख न तृषा धूप नहि छांही। सुखदुःख रहित रहै ता मांही ॥४॥ काल = अविद्या। नाम = आत्म स्वरूप। जगत पियारा = सबके परम प्रेमास्पद।

साखी — अगम अपार रूप बहू, और अरूप बहु भाय।
बहुत ध्यान के जोहिया, नहि तेहि संख्या आय ॥२०७७

भाव—गिनती से परे परमात्मा अनंत रूप है। अगर कहें कि नाना होने से ही उसकी संख्या नहीं भासती तो इस पर कहते हैं —

साखी — एक कहौं तो है नहीं, दोय कहो तो गारि।
है जैसा रहे तैसा, कहहि कबीर विचारि ॥१२६-१३०॥

गारि = दोष। इसलिए परमात्मा एक अनेक से भिन्न सच्चिदानन्द रूप है। अनेक की अपेक्षा से एक कहा गया है, संख्या की दृष्टि से नहीं।

शब्द ८७॥७१ — चातक कहाँ पुकारौ दूरी। सो जल जगत रहा भर पूरी ॥१॥ जेहि जल नाद बिंद को भेदा। षटकर्म सहित उपाने बेदा ॥ जेहि जल जीव शीव को वासा। सो जल धरणी अमर प्रकाशा ॥३॥ जेहि जल उपजल सकल शरीरा। सो जल भेद न जान कबीरा ॥४॥ चातक = पपीहा, अज्ञानी जीव। जल = आत्म चैतन्य। जगत = ब्रह्माण्ड। जेहि······ प्राणी मात्र की स्थिति जिस परमात्मा में है तथा सारे कर्म

काण्ड सहित वेद की भी कल्पना उसी से है। जेहि जल··· जिस परमात्मा में ही जीव ईश्वर की स्थिति है वह सर्वत्र परिपूर्ण है। सारे प्राणी मात्र का अधार परमात्मा है उसे अज्ञानी नहीं जानता।

शब्द ४२—कोइ राम रसिक रस पीवहुगे। पीवहुगे सुख जीवहुगे।। फल लंकृत बीज नहिं बोकला, सुख पंछी तहँ रस खाई। चुवे न बूंद अंग नहिं भीजै दास भवँर सब संग लाई ।।२।। निगम रसाल चार फल लागा, ता में तीन समाई। एक दूर चाहे सब कोई, यतन-यतन काहु पाई ।।३।। गये वसन्त ग्रीष्म ऋतु आई, बहुरि न तरुवर तर आवे। कहहि कबीर स्वामी सुख सागर, राम मगन है पावै ।। ४ ।। राम रसिक = स्वरूपानन्द के जिज्ञासु। रस = ब्रह्मानन्द। सुख... = आनन्द रूप से स्थित होंगे। फल ··· इस आत्मानन्द रूपी फल में गुठली वगैरह नहीं है अर्थात निर्विकार है। शुक··· शुद्ध जिज्ञासु इसे पान करते हैं। अर्थात स्वरूपानन्द में मग्न होते हैं। चवे···वाह्य फल की तरह न इसमें बूँद चूता है और न इसमें हाथ भींजता है अन्तर्मुखी आनन्द की गम्भीरता से दास···सभी जिज्ञासु तृप्त होते हैं। निगम रसाल = वेद उपनिषद रूप आम्र वृक्ष। चार फल—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। तीन = धर्म, अर्थ, काम। समायिक = मायिक। एक = मोक्ष। दूर = इन्द्रियातीत। काहू = कोइ, शुद्ध जिज्ञासु। वसंत= सांसारिक अह्लाद। ग्रीष्म ऋतु = मिथ्यापन। तरुवर =

संसार। इसी विषय में—भा रे नयन रसिक जो जागे। पार ब्रह्म अविगति अविनाशी, कैसहूँ के मन लागे। संकट शौच पोच यह कलि मह, बहुतक व्याधि शरीरा। जहाँ धीर गम्भीर अति निश्चल तहाँ उठि मिलो कबीरा॥ शब्द ४१॥ नयन रसिक = आत्मानुरागी। शौच पोच = निंदित रूप। जहाँ...परमात्म स्वरूप में स्थित हो।

॥ ज्ञान चौंतीसी ॥

यद्यपि इसमें बहुत प्रसंग हैं तथापि ज्ञान की प्रधानता से इसे ज्ञान चौंतीसी कहते हैं।

ओ ओंकार आदि जो जाने। लिखि के मेटि ताहि सो माने। ओ ओंकार कहे सब कोई। जिन यह लखा सो विरला होई॥ ॥ १॥ ओ ओंकार ... सृष्टि का मूल ॐकार रुप माया विशिष्ट ईश्वर को जो जानता है सो लिखकर मेटने वाले को ही मानता है। किन्तु इसके लक्ष स्वरूप शुद्ध चैतन्य को जानने वाला कोइ बिरला ही है।

कका[१] कमल[२] किरण[३] महँ पावे। शशि[४] विकसित संपुट[५] महँ आवे। तहाँ कुसुम्भ[६] रंग जो पावे। अगह गाहि के गगन रहावे॥२॥

१ सुख स्वरुप आत्मा। २ हृदय कमल। ३ आत्मज्योति ४ चन्द्रमा के समान खिले हुए। ५ हृदय कमल के मध्य में। हृदय में अनेक प्रकार की कल्पित ज्योति को त्यागकर

मन इन्द्रियों से नहीं ग्रहण करने योग्य शुद्धात्मा का हृदयाकाश में अनुभव करे।

खख्खा चाहे खोरि मनावे। खसम छोड़ि दसहु दिशि धावे।
खसमहूँ छोड़ि क्षमा होय रहिये। होय न क्षीण अक्षय पद लहिये।३।

खख्खा...हृदयाकाश में स्थिति चाहने वाला दोषों को दूर करे। खसम = परमात्मा। दशहुँ ... कल्पित ईश्वरादि के पीछे सर्वत्र दौड़ता है। खसमहुँ...कल्पित ईश्वरादि को छोड़ कर शांत हो रहो। है न...कभी नष्ट न होकर सत्पद को प्राप्त होगा।

गग्गा गुरु के बचने मान। दूसर शब्द करे न कान।।
तहाँ विहंगम कबहुं न जाई। अगह गहि के गगन रहाई ।।४।।

गग्गा = विघ्न नाशक। विहंगम = राग द्वेष रूप पक्षी। अगह...परमात्मा को पाकर हृदयाकाश में स्थित होता है।

घघ्घा घट फूटे घट होई। घट ही में घट राख समोई ।।
जो घट घटै घटे फिर आवे। घट ही में फिर घट ही समावें।।५।।

घघ्घा = अधर्म। घट...एक शरीर के बाद दूसरा शरीर होता है। घटही ... शरीर वासना को शरीर में लय करे। जो घट...शरीर की आसक्ति से शरीर ही में आना पड़ता है। घटही...इसलिये शरीर की वासना शरीर ही में लय करो।

ङङ्ङा निरखत निशिदिन जाई। निरखत नयन रहा रतनाई।।
निमिष एक जो निरखे पावे। ताहि निमिष में नयन छिपावे।६।

ङङ्ङा ... भयानक (सांसारिक विषय पदार्थ)। नयन= बुद्धि। रतनाई = चंचल। निरखे पावे = स्वरूपानन्द का अनुभव हो। नयन छिपावें = बाह्य वृत्ति नष्ट हो जाती है।

चच्चा चित्र रचो बड़ भारी। चित्र छाड़ ते चेतु चित्रकारी।
जिन यह चित्र विचित्र उ खेला चित्र छाड़ु ते चेतु चितेला॥७॥

चच्चा = चोर। चित्र...भयंकर चोर रूप संसार चित्र रचा हुआ है। चेतु = समझो। चित्रकारी = सृष्टि कर्त्ता। चितेला = ईश्वर।

छच्छा आहि छत्रपति पासा। छकि क्यों न रहत मेटि सब आशा।
मैं तोहि छिन-छिन समझाया। खसम छोड़ि कस आपु बँधाया॥८॥

छच्छा = निर्मल (शुद्ध स्वरूप)। छत्रपति = चक्रवर्ति। व्यापक परमात्मा। आहि = पास ही में है। खसम = परमात्मा।

जज्जा ई तन जीयत ही जारो। यौवन जारि युक्ति तन पारो॥
जो कुछ जानि-जानि पर जरे। घटहि जोत उजियारी करे।९।

जज्जा = जीतनेवाले। जियतहि = जीवन में ही। जारो= अभिमान का त्याग करो। यौवन......जवानी के सारे विकारों को युक्ति से जीतो। जो कुछ ... जो कोई इस शरीर को तुच्छ समझकर अभिमान त्यागता है। घटहि......वह शरीर ही में परमात्मा को प्राप्त करता है।

झझ्झा अरुझि सरुझि कित जान। हींड़त ढूँढ़त जात परान॥
कोटि सुमेर ढँूढ़ सो आवे। जो गढ़ गढ़ा गढ़हि सो पावे।१०।

झझझा = वाणी। अरुझि……गुरुवा की किस वाणी में उलझे हो, सुलझो समझो। हींड़त……कल्पित ईश्वर ढूंढ़ते ढूंढ़ते जीवन बर्बाद होता है। कोटि……कहीं भी ढूंढ़ो किंतु सृष्टि कर्त्ता को शरीर के अन्दर ही पावोगे।

ञञा निग्रह से करु नेहू। करु निरुवार छाड़ संदेहू॥
नहिं देखे नहिं भाजे केरू। जानहू परम सयानय येहू॥
नहीं देखो नहि आप भजाऊ। जहाँ नहीं तहाँ तन मनलाऊ॥
जहाँ नहीं तहाँ सब कुछ जानी। जहाँ नहीं तहाँ लै पहिचानी।११

ञञा=शयन गायन। निग्रह = संयम। निरुआर= विवेक। संदेहू = स्वरूप में अविश्वास। नहि देखो = अपने स्वरूप के बिना किसी को सत्य न समझें। नहीं = किसी कल्पित लोक की चाहना न करें। सयानय = बुद्धिमानी। नहिं देखो = उपर्युक्त जहाँ……जो मन इन्द्रियों का विषय नहीं है उसी सत स्वरूप में स्थित हो।

टट्टा विकट वाट मन माही। खोली कपाट महल में जाही।
रही लटपटी जुटा तन आही। होहि अटल ते कतहूं न जाई।१५।

टट्टा = ध्वनि आदि। विकट……हृदयाकाश में पहुँचने का रास्ता बहुत कठिन है। कपाट……पंचकोष का पर्दा। रही……स्वरूप में निश्चलता से स्थिर हो जाय।

ठठ्ठा ठौर दूर ठग नियरे। नित के निठुर कीन्ह मन घीरे।
जो ठग ठगु सब लोग सयाना। सो ठग चीन्ह ठौर पहिचाना।१३।

ठट्ठा = शठ । ठौर = कल्याण मार्ग । ठग = कामादिक । नियरे = पास में । नितके = सदा से । सो ठग......उस ठग को पहिचान कर अपना कल्याण करो।

डड्डा डर उपजे डर होई । डर ही में डर राखु समोई ॥
जो डर डरे डरहि फिर आवे । डर ही में फिर डरहि समावे।१४।

डड्डा = भयानक। डर......संसार में डर पर डर बना ही रहता है। डर ही में......डर से डर को दबाओ। अर्थात् कामादिक से डरते हुए काल्पनिक देवादि का भय त्याग करें। जो डर.......काल्पनिक भय का प्रवाह बना रहता है।

ढढ्ढा ढूंढ़त है कित आन, हींड़त ढूँढ़त जात परान ॥
कोटि सुमेरु ढूँढ़ फिर आवे । जो ढूँढ़ा सो कतहूँ न पावे।१५।

ढड्ढा = ज्ञान । भाव-ज्ञान स्वरूप आत्मा हृदय से भिन्न कभी नहीं प्राप्त होता।

णण्णा दूई बसाये गाऊँ । रे णण्णा टूटे तेरी नाऊँ ॥
मूए एक जाय तजि घना । मरे यत्यादिक केते गणा।१६।

णण्णा = जीव । दूई......लोक परलोक । टूटे......तेरा नाम भी नहीं रहेगा। मूए...... सभी को छोड़ जीव अकेला जाता है।

तत्ता अति त्रियो नहिं जाई । तन त्रिभुवन में राखु छिपाई ॥
जो तन त्रिभुवन माँह छिपावे । तत्वहि मिले तत्व सो पावे।१७।

तत्वा = जीव ! अति……यह संसार सागर ।. तरा नहीं जाता……ब्रह्माण्ड में अनेक शरीर धारण करता रहता है। तत्वहि……पंच भूत में मिलकर जड़वत बना रहता है।

थथ्था अति अथाइ थाह नहिं पाई । ई थिर उ थिर नाहिं रहाई ॥
थोड़े-थोड़े थिर हो भाई । बिन थंभे, जस मंदिर थंभाई ॥१८॥

थथ्था = पहाड़, जड़ मन। अति……संसार का थाह नहीं है (मन की चंचलता असीम है)। ई थिर……लोक परलोक थिर नहीं है। थोड़े……स्थिरता के साथ।

दद्दा देखहू विनशन हारा । जस देखहु तस करहू विचारा ॥
दशहू द्वारे तारी लावे । तब दयाल के दर्शन पावे ।१९।

दद्दा = मेघ। दशहू = दसो इन्द्रियाँ। तारी = निराध। दयाल = स्वरूप।

धध्धा अर्ध माहि अँधियारी । अर्द्ध उर्द्ध देखु विचारी ।
अर्द्ध छाड़ि उर्द्ध मन लावे । आपा मेटि के प्रेम बढ़ावे ।२०।

धध्धा = धन। अर्द्ध = संसार। अँधियारी = अज्ञानस्वरूप। उर्द्ध = परलोक। उर्द्ध = दोनों से भिन्न। आपा = अभिमान।

नाना वो चौथे मँह जाई । राम के गदह होय खर खाई ।२१।

चौथे……तुरिया से गिरकर नाना प्रपंच में फँसते हैं और विषय लोलुप हो जाते हैं।

पप्पा पाप करे सब कोई। पाप किये कुछ धर्म न होई ॥
पप्पा कहे सुनहु रे भाई। हमरे सेवे कछु न पाई ॥२२॥

पप्पा = विषयी।

फफ्फा फल लागे बड़ि दूरी। चाखे सतगुरु देय न तूरी।
फफ्फा कहे सुनहु रे भाई। स्वर्ग पताल के खबरि न पाई ।२३।

फफ्फा = फल। फल......ज्ञान रूपी फल मन इन्द्रियों से परे है, काल्पनिक बातें करने वाले को वह प्राप्त नहीं होता।

बब्बा बर-बर करे सब कोई। बर-बर किये काज नहिं होई।
बब्बा बात करे अर्थाई। फल के मर्म न जाने भाई ॥२४॥

बब्बा = फल। भाव = बकवादी को अनुभव रूप फल नहीं प्राप्त होता।

भभ्भा भभरि रहा भर पुरी। भभरे ते है नियरे दूरी ॥
भभ्भा कहे सुनहू रे भाई। भभरे आवे भभरे जाई ॥

भभ्भा = भवन। भभरे = भ्रम में। भवरे......भ्रम से नजदीक वस्तु भी दूर है, भ्रम से ही संसार में आवागमन होता है।

मम्मा सेवे मर्म न पावे। हमरे सेवे मूल गमावे।
मम्मा कहे सुनहू रे भाई। मूल छाड़ि कस डारे जाई ॥२६॥

मम्मा = लक्ष्मी, माया। मूल = आत्मस्वरूप। डाहे = विषय पदार्थ।

यय्या जगत रहा भर पूरी। जगतहूँ ते जाना दूरी ॥

यय्या कहे सुनहू रे भाई। हमरे सेवे जय-जय पाई ॥२७॥

यय्या = त्याग। किसी न किसी प्रकार त्याग करना ही पड़ता है। त्याग के द्वारा ही आत्म लाभ होता है।

रारा रारि रहे अरूझाई। राम कहत दुःख दारिद जाई।
रारा कहे सुनहू रे भाई। सतगुरु पूछि के सेवो जाई ॥२८॥

रारा = राम संबंधी त्यागी महात्मा।

लल्ला तुतरे बात जनाई। तुतरे तुतरे परिचय पाई।
अपने तुतर और को कहई। एके खेत दूनो निर्वहई ॥२९॥

लल्ला = आनन्द स्वरूप आत्मा। तुतरे = अधूरा। तुतरे......अंध परम्परा बांध। एके खेत......एक ही अज्ञान क्षेत्र में गुरु शिष्य दोनों भटकते हैं।

वव्वा वह-वह कहे सब कोई। वह वह कहे काज नहिं होई।
वह तो कहे सुनहू रे भाई। स्वर्ग पताल की खबरि न पाई ॥

वव्वा = बकवादी। वह-वह = यत्र-तत्र बैकुंठादि की कल्पना। स्वर्ग......कल्पना को कहीं स्थिति नहीं है।

शश्शा शर देखे नहिं कोई। शर शीतलता एके होई।
शश्शा कहे सुनहू रे भाई। शून्य समान चला जग जाई ॥३१

शश्शा = भेदवादी। शर = सुख समुद्र।

षषा षर-षर करे सब कोई। षर-षर किये काज नहिं होई ॥
षषा कहे सुनहू रे भाई। राम नाम ले जाहू पराई ॥३२॥

षषा = सत्य। षर = सत्य।

सस्सा सरा रचो नहिं आई। शर बेधे शर लागु तबाई ॥

सस्सा के घर सुनगुन होई । इतनी बात न जाने कोई ॥३३॥

सस्सा = क्रोध । सरा......क्रोध की अग्नि चिता के समान है । शर वेधे......कामादिक बाण से भी पीड़ित है । सस्सा के......कामादिक विकार से हृदय शून्य हो जाता है । इतनो......इस बात को कोई नहीं जानता ।

हा हा करत जीव सब जाई । हर्ष शोक सब मांहि समाई ॥
हकरि-हकरि सब बड़-बड़ गयऊ । हा हा मर्म न काहू पयऊ ॥

हा हा = क्रोध । हकरते = कहरते ॥३४॥

क्षक्षा क्षण में सब मिटि जाई । क्षेव परे कहू कहां समाई ॥
क्षेत्र परें कहूं अन्त न पाया । कहहि कबिर अगुमन गोहराया ॥

क्षक्षा = शरीर रूप क्षेत्र । क्षेत्र परे = नाश होने पर । अगुमन = आगे ही । गुहराया = चेता गये । ब्रह्म शब्द अपने स्वरूप की महानता का बोधक है न कि अपने से भिन्न ईश्वरादि का जो संकीर्णतावादी ब्रह्म भ्रम कह कर जिज्ञासु को भटकाते हैं, उन्हें ब्रह्म भ्रम ये चार अक्षर एक साथ बीजक में बताने चाहिये और इस आशय का कोई अन्य शब्द भी कहना चाहिये । वे अर्थ बदलू नीति अपनाकर अपने काल्पनिक विचार की पुष्टि करते हैं । ब्रह्म, भ्रम, सृष्टि की नित्यता, अनीश्वर वादिता ये तीनों बातें बीजक मत से बिल्कुल विरुद्ध है । (प्रकरण ५९, ६० इसी से सम्बन्धित है)

(प्रथम प्रकरण समाप्त)

॥ २ सृष्टि ॥

(१) यह सृष्टि मिथ्या प्रतीति मात्र है।

साखी—झूठ-झूठ के छाड़हू, मिथ्या ये संसार।
तेहि कारण मैं कहत हूँ, जाते होय उगार ॥रमैनी६०॥

शब्द ९८॥१०८—अब हम जानिया हो हरि बाजी का खेल।
डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि लेत सकेल ॥१॥
हरि बाजी सुर नर मुनी जहड़े, माया चाटक लाया।
घर में डारि सबे भरमाया, हृदया ज्ञान न आया ॥२॥
बाजी झूठ बाजीगर साँचा, साधुन की मत ऐसी।
कहँहि कबिर जिन जैसी समझी, ताकी गति भइ तैसी ॥३

सकेल = समेटना। चाटक = नजरबन्द।

(२) फिर भी यह अनादि प्रवाह है।

कोटि कल्प युग बीतिया। झूलत-झूलत बहु कल्प बीते
(हिंडोला २, ३)।

(३) यह सृष्टि माया विशिष्ट ईश्वर की रचना है॥

एकै पुरुष एक है नारी। ताते रची खानि भौ चारी ॥र०२७॥

अर्थ—एक अंड ॐकार अर्थात् विशिष्ट ब्रह्म से सारी सृष्टि की रचना हुई और उस मायिक सृष्टि का ब्रह्म ही रक्षक है।

(४) व्यवहार में माया की प्रधानता है।

एकै नारी जाल पसारी, जग में भया अंदेशा।

खोजत-खोजत कहुँ अन्त न पाया, ब्रह्मा विष्णु महेशा ॥शब्द ५.

माया में ब्रह्म के आभास से जीव और ईश्वर है।

साखी—जीव शीव सब प्रगटे, वै ठाकुर सब दास।
कबीर और जाने नहीं, राम नाम की आस ॥

शीव = ईश्वर। ठाकुर = स्वामी। वै = ईश्वर। सब= जीव। शुद्ध आत्म चैतन्य सृष्टि कर्त्ता नहीं। र० ३ ॥

शब्द १२॥४३—पंडित मिथ्या करो विचारा।
ना वहाँ सृष्टि न सृजन हारा ॥ १ ॥
थूल स्थूल पवन नहिं पावक, रवि शशि धरणि न नीरा।
ज्योति स्वरूप काल नहिं उहवाँ, वचन न आहि शरीरा ॥ २ ॥
कर्म धर्म कछुवो नहि उहवाँ, ना वहाँ मंत्र न पूजा।
संयम सहित भाव नहिं उहवाँ, सो दहुँ एक कि दूजा ॥ ३ ॥
गोरख राम एक्को नहि उहवाँ, ना वहाँ वेद विचारा।
हरि हर ब्रह्मा नहिं शिव शक्ति, ना वहाँ तीर्थ आचारा ॥ ४ ॥
माय बाप गुरू जाके नाहीं, सो दूजा कि अकेला।
कहहिं कबीर जो अबकी समुझे, सोई गुरू हम चेला ॥ ५ ॥

वहाँ = परमात्म पद में। सृजन हारा=कर्त्ता ईश्वर।

भाव है कि परमात्मा सारे प्राकृतिक विकारों से रहित है। कर्त्ता ईश्वर, विशिष्ट ब्रह्म है। इसी से विशिष्ट ब्रह्म का शुद्ध ब्रह्म में अभाव है, शुद्ध ब्रह्म की केवल सत्ता मात्र है।

साखी—जहिया कृतम ना हता, धरति न हती नीर।
उत्पत्ति प्रलय ना हता, तबकी कहे कहे कबीर ॥ २०६ ॥

भाव उपर्युक्त है—ब्रह्मादि तीनों त्रिगुण रूप हैं।
रजगुण ब्रह्मा तम गुण शंकर सत्व गुणा हरि सोई।
कहहिं कबिर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरूक न कोई ॥शब्द ८२

प्रथम, द्वितीय रमैनी का यही आशय है। सृष्टि प्रक्रिया पौराणिक अनुवाद मात्र है।

साखी ३४७, ३४८, ३४९ में पुरुष विषयक प्रश्न और समाधान है वह भी रोचक है। ध्यान में शरीर व आत्मा दोनों का प्रतिबिंब भासता है। वह बिंब का ज्ञान कराना मात्र है सो समझने योग्य है।

तुम हम हम तुम और कोई। तुमही पुरुष हमहि तोर जोई ।र०९

इसका भाव यह है कि—ब्रह्म और प्रकृति का तादात्म सम्बन्ध है।

(प्रकरण २ समाप्त)

॥ ३ सृष्टि कर्ता ॥

इस प्रकरण में माया विशिष्ट ईश्वर ही वर्णित है।

॥ ४ ईश्वर जीव व माया ॥

ईश्वर की उपाधि विद्या है, अविद्या विशिष्ट चैतन्य को जीव कहते हैं, जीव भाव अज्ञान के सम्बन्ध से है।

साखी—हंसा के घट भीतरे, बसे सरोवर खोट।
एको ठौर न लागिया, रहा स ओटे ओट ॥१७॥

मानव शरीर धारी जीव के हृदय में कुवासना का सरोवर

भरा है जिससे सतसंग में न आने पर वह पंच कोष के पर्दे में ही रह जाता है।

साखी—हंसा तू तो सबल था, हलकी अपनी चाल।
रंग कुरंगे रंगिया, किया और लगवार। १५॥

अर्थ—हे हंस! वस्तुतः तू महान है, किन्तु अविद्या वश होकर राग द्वेष के रंग में रंगकर अनात्म प्रेमी बन गया। कल्पित देवादि का भक्त हुआ।

हंसा तू सुवरण वरण, क्या वरणू मैं तोहि।
तरुवर पाय पहिलिहौ, तवे सराहो तोहि ॥१७॥

अर्थ—हे हंस! तुम सुवर्ण तुल्य दीप्त वर्ण वाले नित्य प्रकाश स्वरूप हो किन्तु जब तुम शरीर या संसार रूप वृक्ष को प्राप्त कर उससे निवृत्त हो जाओगे तब मैं तुम्हारी सराहना करूँगा। (यह साखी पुरुषार्थ प्रकरण में भी आयी है भाव भेद से पुनरुक्ति नहीं है)

माया तुच्छ अनिर्वचनीय और भ्रमरूप है। जैसे—गोड़ न मूड़ प्राण आधारा। तामें भमरि रहा संसारा ॥ शब्द ७२॥ पेट फारि जो देखिये। आहि करेज न आंता ॥ शब्द ७२॥ फलै न फूलै वाकी है वानी। निशिवासर बेकार चुवै पानी ॥ शब्द ८९ ॥ ई सब अकथ कहानी। शब्द २ इत्यादि। माया ब्रह्म के आश्रित रह कर ही द्वन्द्व मचाती है।

राम तेरी माया द्वन्द्व मचावे ॥शब्द १ ॥

।। ५ माया की प्रबलता ।।

।। शब्द २ ।।

माया महाठगिन हम जानी । त्रिगुणी फांस लिये कर डोले बोले मधुरी वाणी ।।१।। केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी । पण्डा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ हू में पानी ।२।। योगी के योगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी । काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी ।।३।। भक्ता के भक्तिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्माणी । कहँहि कबीर सुनहू हो संता ई सब अकथ कहानी ।।४।। कहरा १२—यह माया रघुनाथ की बौरी खेलन चली अहेरा हो । चतुर चिकनियाँ चुनि चुनि मारे, राखा किन्हू न न्यारा हो ।।१।। मौनी वीर दिगम्बर मारे, ध्यान धरन्ते योगी हो । जंगल में के जंगम मारे, माया किन्हू न भोगी हो ।२। वेद पढ़न्ते वेदुआ मारे, पूजा करन्ते स्वामी हो । अर्थ विचारत पण्डित मारे, बांधे सकल लगामी हो ।। ३ ।। शृंगी ऋषि वन भीतर मारे शिर ब्रह्मा के फोरी हो । नाथ मछंदर चले पीठि दे सींगल हूँ में बोरी हो ।। ४ ।। साकट के घर कर्त्ता धर्त्ता हरि भक्तन की चेरी हो । कहँहि कबीर सुनहू हो सन्तो ज्यों आवे त्यों फेरी हो ।। ५ ।।

दिगम्बर = नगा रहने वाला । जंगम = जंगम नामक एक पंथ वाले । वेदुआ = वेद जानने वाले । लगामी = मन रूप लगाम लगाकर । त्रिगुणी फांस = सत्व रज और तम के द्वारा सुख दुख और मोह में माया सबको पीस रही है ।

साखी—कबीर माया मोहनी, भई अँधेरी लोय ।
जे सूता तेहि मूसिया, रही वस्तु को रोय ॥३६९॥

अँधेरी लोय = आवरण स्वरूप । सूता = परदे में रह गया । मूसिया = वंचित किया । वस्तु = आत्म धन ।

साखी—ई माया है चूहड़ी, औ चूहड़े की जोय ।
बाप पूत अरुझाय के, संग न काहू के होय ॥१४४॥

चूहड़ी = चंडालिन । चूहड़ा = पापी जीव । बाप पूत = ईश्वर, जीव । अरुझाय = द्वैत बुद्धि लगाकर ।

साखी—माया जग सापिन भई, विष ले बैठी बाट ।
सब जग फंदे फंदिया, चले कबीरु काट ॥१९६॥

कबीरु = विवेकी ।

प्रकरण ५ समाप्त

॥ ६ काल ॥

माया ही काल रूप होकर सबका संहार करती है ।

साखी—मच्छ रूप माया भई, जौहरि खेल अहेर ।
हरिहर ब्रह्म न उबरे, सुर नर मुनि केहि केर ॥२०४६ की॥

अर्थ—माया ही ब्रह्माण्ड के भोग्य पदार्थ होकर भोक्ता जीव का संहार करती है जिससे ब्रह्मादि भी नहीं बचे, औरों का क्या कहना ।

ब्रह्मादिक की चर्चा पौराणिक है । वस्तुतः यह प्राकृतिक शक्ति है । सभी त्रिगुणी पदार्थों का संहार होता है ।

साखी—कलि काठी कालो घुना, यतन-यतन घुन खाय।
काया मध्ये काल वश मर्म न कोई पाय ॥१०९॥१०३॥

अर्थ—इस शरीर रूपी लकड़ी में काल रूपी घुन लगा है जो शनैः शनैः इस शरीर को खा रहा है परन्तु उसका कोई भेद नहीं पाता।

साखी—तीन लोक भो पिंजरा, पाप पुण्य भौ जाल।
सकल जीव सावज भये, एक अहेरी काल ॥२९२॥१९॥

सावज = शिकार। अहेरी = शिकारी।

साखी—तन ससा मन सोनहा, काल अहेरी नीत।
एके डांग बसेरवा, कुशल पूछो का मीत ॥१४७॥१५८॥

अर्थ—यह शरीर रूप खरहा है और मन रूप कुत्ता है, मन रूप कुत्ते को लेकर शरीर रूप खरहे का शिकार करने के लिए काल सदैव ही मौजूद है, पुनः संसार रूप एक ही जंगल में (हृदय रूप देश में) तीनों का निवास है अतः हे मित्र! इस विषय में कुशल क्या पूछते हो। सर्वथा नाश ही नाश है।

साखी—मुए हो मर जावोगे, बिन शर थोथे भाल।
परे करायल वृक्ष तर, आज मरहु कि काल ॥१८६॥

अर्थ—हे अज्ञ जीवों! ज्ञान विचार से हीन होकर तुम मृत सदृश ही हो इसी कारण जन्म मरण के चक्र में जाओगे सो सीधे नहीं, काल द्वारा अत्यन्त पीड़ित होकर। जैसे बिना धार के (तिक्ष्णता रहित) भाले से आदमी

अत्यन्त वेदना पूर्वक मारा जाता है। वैसे ही काल तुमको नाना प्रकार के राग द्वेष की पीड़ा से पीड़ित करके मारेगा, क्योंकि कर्म वृक्ष के नीचे पड़े हो। इस लिए आज या कल मरण चक्र में पड़ना ही पड़ेगा।

पावन पहुमी नापते, दरिया करते फाल।
हाथ न पर्वत तौलते, तेहि धरि खायो काल ॥१८६॥

भाव है कि बड़े-बड़े सिद्ध लोग भी नष्ट हुए।

साखी—बाल कुमार युवा जरा, चारि अवस्था आय।
जस मुसवा के तक्के बिलइया, अस यम घात लगाय ॥३१४

साखी—काल खड़ा शिर उपरे, जागु विराने मीत।
जाका घर है गैल में, सो क्यों सोवे निश्चिन्त ॥११८॥

गैल = रास्ता, एकान्त।

साखी—दस[1] द्वारे का पींजरा[2], ता में पक्षी पौन[3]।
रहवै को आश्चर्य है, जात अचम्भा कौन ॥ परि० १३ ॥

१--दो आँख, दो कान, दो नाक, मुख, लिंग गुदा, (ब्रह्मारन्ध्र) ब्रह्मरन्ध्र। २--शरीर। ३--प्राण रूप जीव। क्षेम कुशल औ सही सलामत। कहरा १० इसी में चरितार्थ है।

(प्रकरण ६ समाप्त)

॥ ७ सर्व साधारण को चेतावनी ॥

१—धन पुत्रादि का अभिमान व्यर्थ है क्योंकि वह नाशवान है।

रमैनी १६--नाहि प्रतीजे यह संसारा, द्रव्य के चोट कठिन कै मारा। सो तो शेषो जाय लुकाई, काहू के प्रतीत न आई ॥

द्र०यक .....धन के रक्षणादि में बहुत ही संकट हैं।

शेषो = अन्त में। लुकाई = छिप जाता है।

२—शरीर का अभिमान भी मूर्खता है क्योंकि वह केवल अपना ही नहीं है, उसके बहुत हिस्सेदार है।

रमैनी ७८—मानुष जन्म चुके अपराधी, यह तन केर बहुत है सांझी ॥ तात जननि कहे पुत्र हमारा। स्वारथ जानि कीन्ह प्रतिपाला ॥ कामिन कहे मोर पिउ आही। बाघिन रूप ग्रासन चाही। सूत कलत्र रहें लौलाई। जम्बुक नित्य रहे मुँह बाई ॥ काग गिद्ध दोउ मरण विचारे। शुकर श्वान दोउ पंथ निहारे ॥ अग्नि कहे मैं ई तन जारो पानि कहे मैं जरत उबारो ॥ धरती कहे मोहिं मिलि जाई। पवन कहे मैं लेउ उड़ाई ॥ तेहि घर को घर कहे गमारा। सो बेड़ी है गले तुम्हारा। सो तन तुम आपन कै जाना विषय स्वरूप भूला अज्ञानी ॥

साखी—इतना तन के साझिया, जन्मो भर दुःख पाव।
चेतत नाही मुग्ध नर, मोर-मोर गोहराय ॥

शब्द १०४—तन धरि सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया ॥ उदय अस्त की बात कहत हौ, ताका करहु विवेका ॥ बाटे-बाटे सब जग दुखिया क्या गृहि बैरागी। शुक्राचार्य दुख ही के कारण गर्भे माया

त्यागी ।। २ ।। योगी जंगम ते अति दुखिया तपसी के दुख दूना । आशा तृष्णा सब घट व्यापे कोई महल नहिं सूना ।। ३ ।। साँच कहो तो सब जग खीझै । झूठ कहा नहि जाई । कहँहि कबीर तेउ भौ दुखिया, जिन यह राह चलाई ।। ४ ।।

बाटे-बाटे = सकाम कर्मी उपासक गण । जिन = ब्रह्मादिक राह = कर्मकाण्डादि ।

शब्द ।। १०१ ।।—अब कहाँ चला अकेला मीता । उठहुँ न करहु धरहूं का चिंता । खीर खार घृत पिंड सँवारा । सो तन ले बाहर करि डारा ।। २ ।। जेहि शिर रचि-रचि बाँधेउ पागा । सो शिर रतन विडारत कागा ।। ३ ।। हाड़ जरे जस लकड़ी के झूरी । केश जरे जस तृण की कूड़ी ।।४।। आवत संग न जात संघाती । काह भये दल बाँधल हाथी।।५।। माया के रस लेन न पाया । अन्तर यम बिलार है धाया ।।७।। कहँहि कबिर नर अजहुँ न जागा । यम के मुगदर माँझ शिर लागा ।। ८ ।। शब्द ९९, १००, १०२ इसी में चरितार्थ है । कहरा १, २, ४, ९, भी तथा जारहु जग का नेहरा । चाचर २। हंसा सरवर शरीर में । बेलि—१ ।।

रमैनी ४४—कबहूँ न भयउ संग औ साथा । ऐसेउ जन्म गमायेउ हाथा ।। १ ।। बहुरि न पैहौं ऐसो थाना । साधु संगत तुम नहिं पहिचाना ।। अब तोर होय नरक महँ बासा । निशिदिन रहेउ लबारके पासा ।।

थाना = मुकाम ।

रमैनी ६५—अपने गुण को अवगुण कहउ । इहे अभाग जो तुम न विचारेउ ॥ तुम जियरा बहुते दुख पाया । जल विनु मीन कौन सचुपाया ॥ भाव है कि मनुष्य अपनी मूढ़ता से अपने सत् स्वरूप का विचार न कर काल्पनिक देवतादि में मन लगाकर चौरासी का कष्ट भोगता है ।

रमैनी १८—अद्भुत पंथ वरणि नहिं जाई । भूले राम-भूले दुनि आई ॥ जो चेतहू तो चेतहू भाई, नहिं तो जीव यम ले जाई ॥ शब्द न चीन्हे कथे ज्ञाना । ताते यम दिया है थाना॥ भूले······दुनिया में भूलकर राम को भूल गया । यम··· अज्ञान अंधकार में पड़ेगा ।

रमैनी ८०—अब कहुं राम नाम अविनाशी । हरि छोड़ि-जियरा कतहूं न जासी । जहाँ जाहु तहाँ होउ पतंगा । अब जनि जरहु समुझि विष संगा ॥ राम नाम लौ लायसि लीन्हा । भृंगी कीट समुझि मन दीन्हा ॥ भौ अति गुरु जे दुःख के भारी । करु जिय यतन जो देखु विचारी ॥ मन की बात है लहरि विकारा । ते नहिं सूझे वार न पारा ॥

साखी—इच्छा करि भवसागर, वोहित राम अधार । कँहहिं कबीर हरि शरण गहु । गो खुर बछ विस्तार ॥

भृंगी कीट······कीट भृंग की तरह राम नाम में मन लगाओ ।

भौ···संसार दुख बड़ा कठोर है। इच्छा करि···इच्छा रूप ही संसार समुद्र है। वोहित···उससे पार होने के लिए राम नाम ही जहाज तुल्य है। गोखुर······हरी शरण लेने से यह संसार सागर गौ के खूर के समान हो जायगा।

रमैनी २१—बहुते दुख दुख की खानी। तब बचिहौं जब रामहि जानी॥ रामहि जानि युक्ति जो चलई युक्ति ते फंदा नहिं पड़ई॥ युक्तिहि युक्ति चला संसारा। निश्चय कहा न मान हमारा॥

हमारा = गुरू का। युक्ति हि युक्ति······मन मानी युक्ति।

साखी—सुर नर मुनि औ देवता, सात दीप नौ खण्ड।
कहहिं कबिर सब भोगिया, देह घरे का दण्ड॥२९५॥३१७

साखी—मानुष जन्म दुर्लभ है, बहुरि न बारम्बार।
पक्का फल जो गिर पड़ा, फिर नहिं लागे डार॥११५॥१२०॥

साखी—संसारी सबे विचारी, क्या गृहि क्या योग।
अवसर मारे जात है, चेत बिराने लोग॥८६॥९२॥
बिराने = आत्म विमुख।

साखी—साहू से भौ चोरवा, चोरन ते भौ सूझ।
तब जानेगा जियरा, मार पड़ेगा तूझ॥१५१॥११९॥

साहू से··· संत जन से मुँह छिपाते हो। चोरन ,, ··· गुरुआ लोग के दास बनते हो। मार पड़ेगा तूझ··· तुम्हें यम यातना होगी।

साखी--बरिया बीते बल घटे, केश पलटि भौ और।
बिगड़ा काज सम्हार ले, कर छूटे ना ठौर ॥३६२॥
कर छूटे ··· शरीर के नाश होने पर।

साखी--राम नाम जाने नहीं, लागी मोटि खोरि।
काया हाँड़ी काठ की ना वह चढ़े बहोर ॥३३६॥
राम ··· स्वरूप चिंतन नहीं किया। खोरि = दोष।

साखी--नाम जाने न ग्राम[1] का, भूला[2] मारग[3] जाय।
काल[4] गड़ेगा[5] काँटा[6], अगमन[7] कसन खराय[8] ॥२०६॥९
१ लक्ष्य स्थान। २ स्वरूप बोध। ३ काम्य कर्म या दूषित कर्म। ४ जन्मान्तर में। ५ भोगना पड़ेगा। ६ बुरा फल। ७ आगे ही। ८ चेतते हो।

साखी--मरण मरण सब कहे, मरण न जाने कोय।
ऐसा हो के ना मुवा, बहुरि न मरना होय ॥२३४॥२४४॥
भाव—विवेक के बिना मृत्यु से छुटकारा नहीं है।

साखी--मानुष है के ना मुवा, मुआ सो डांगर ढोर।
एको जीव हि ठौर नहीं, भया सो हाथी घोर ॥१०९॥११५
भाव — स्वरूप साधना के बिना नीच गति होती है।

साखी--बना बनाया मानवा[1], बिना बुद्धि बे तूल।
काह लाल ले कीजिये, बिना बास[2] का फूल ॥३०४॥
१ मानुष शरीर। २ व्यर्थ। ३ सुगन्धि। भाव है कि विवेक विचार के बिना मनुष्य शरीर वृथा है।

साखी--ऊर्व खर्व ले द्रव्य है, उदय अस्त ले राज।
भक्ति महातम ना तूले, ई सब कौने काज ॥२२८॥२२६॥

साखी--कबीर दुर्मति दूर कर, अच्छा जन्म बनाव।
काग गवन बुद्धि छोड़िये, हंस गवन चलि आव ॥२५१॥

साखी--इहइ[1] संबल[2] करिले आगे[3] विषमी[4] बाट।
स्वर्ग[5] विसाहन सब चले, जहाँ बनिया ना हाट॥

१ सत्संग में। २ ज्ञान विचारादि। ३ अन्यत्र। ४ कुमार्ग।
५ कल्पित लोक। बनिया ··· सतगुरु, सत्संग।

साखी--जिन-जिन सँबल ना किया, अस[1] पुर पाटन[2] पाय।
काल्हि परि दिन अस्तये, (अन्तर)सँबल किया न जाय ॥२९०

१ शरीर। शहर। ३ वृद्धावस्था। ४ मृत्यु।

साखी--सँबल संबल सब कहे, संबल परो न साथ।
सँबल घटे पगु थके, जीव बिराने हाथ ॥२९१॥

साखी--आगे सीढ़ी साँकरी, पाछे चकनाचुर।
परदा तर की सुन्दरी, रही धका से दूर ॥८६॥९१॥

अर्थ---मुक्ति मार्ग अति कठिन है। पाछे अशुआदि योनि में चकनाचूर होता है। इस प्रकार ग्रसित जीव सत स्वरूप से वंञ्चित रहता है।

साखी--काहे हरिणी[1] दूबरी[2] इहे हरिअरे[3] ताल।
लक्ष अहेरी[4] एक मृग केतिक टारो भाल[5] ॥५९॥११९॥

१ जीव। २ खिन्न ३ परमानन्द से पूर्ण हृदय। ४ गुरुवा। ५ कल्पित योग।

साखी--बहु बंधन से बाँधिया, एक बेचारा जीव ।
की बल छूटे आपना, की छुड़ावे पीव ॥२१३॥२११॥

अर्थ—स्थूल शरीर के वात पित्तादि, सूक्ष्म शरीर के काम क्रोधादि तथा गुरुवावों के भ्रम जालादि । इन नाना प्रकार के बंधनों से एक बेचारा जीव जकड़ा हुआ है । या तो यह अपने प्रबल प्रयत्न से छूटेगा या गुरु की कृपा से छूटेगा । वास्तव में तो गुरु की बतायी युक्ति तथा अपने प्रबल पुरुषार्थ से छूटेगा ।

प्रकरण ७ समाप्त

॥ ८ अविवेक ॥

तमोगुणी स्वभाव वाले अति मूढ़ता के कारण उपदेश के योग्य नहीं हैं ।

साखी--मूढ़ कर्मि माने नहीं, नखशिख पाखण्ड आहि ।
वाहन हारा क्या करे, बो वाह न लागे ताहि ॥१५५॥
वाहन हारा = उपदेशक । वाह = उपदेश ।

साखी--जैसे गोली गुमज की, नीच पड़े ढहराय ।
तैसे हृदया मूर्ख का, शब्द नहीं ठहराय ॥१६१॥
मूरख से क्या कहिये, शठ से क्या वौसाय ।
पाहन में क्या मारना, चोखा तीर नसाय ॥१६८॥
सूअरहि दूध पिलाय के, राखो पलंग सुताय,
गुरु के शब्द चीन्हे नहीं, फिर चहले को जाय ॥३२२॥

मूरख को समझावते, ज्ञान गांठ का जाय।
कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥१५५॥

पानी पियावत क्या फिरो, घर-घर सायर वारि।
तृषावन्त जो होयगा, पीयेगा झख मारि ॥१२॥

झखमारि = मन मारकर, हार मानकर।

साखी--हंसा मोति बिकानिया, कंचन थार भराय।
जो जस मर्म न जाने, सो तस काह कराय ॥ १३ ॥

मोति = उपदेश।

साखी--जहर जिमी दै रोपिया, अमीं सींचे सौ बार।
कवीर खालक नाहीं तजे, जा में जौ न विचार ॥७४॥

खालक = संसार।

साखी--कहँहि कबीर मैं हारा, कोटि यतन समुझाय।
बाड़ि पूँछ उठाय के, चली वेढ को जाय ॥३२१॥

बाड़ी = शूकर। वेढ़ = खोभार।

समुझाये समुझे नहीं, पर हथ हाथ बिकाय।
मैं खैंचत हो आपको, वह चल यमपुर जाय ॥२३०॥

आपको = स्वरूप की ओर। यमपुर = अनात्म पदार्थ।

साखी--औरन के उपदेश ते, मुँहरे परिहे रेत।
रास बिरानी राखते, खाइन घर का खेत ॥३०६॥

मुँहरे······तिरस्कार ही मिलेगा। रास······मूढ के उपदेश। खाइन······हृदय का विचार जाता रहेगा।

साखी--जासो दिल नाहीं मिला, शब्द न वेधा अंग ।
कहँहि कबीर कैसे बने, हंस बके का संग ॥३४१॥
हंस बक = सज्जन, असज्जन ।

साखी--मलया गिरि के बास में, वेधा ढाक पलास ।
वेना कबहुँ न बेधिया, युग-युग रहिया पास ॥ ४९ ॥
वेना = बाँस । युग-युग = सर्वदा ।

साखी--बिन रसरी खाल को बँधा, तासो बँधा अलेख ।
दीन्हा दर्पण हस्त मध्ये, चसम बिना क्या देख ॥२२६॥

अर्थ—अज्ञान वश संसारी जीव नलके में फँसे सुग्गे की तरह बिना किसी बंधन के ही बँधा हुआ है, वही बन्धन शुद्ध चेतन में प्रतीत हो रहा है । ज्ञान विचार यदि उसे दिया भी जाय तो विवेक के बिना क्या अनुभव कर सकता है ।

साखी- गुणिया तो गुण ही गहे, निर्गुणिया गुणहि घिनाय ।
जायफल दीजे बैल को, क्या बूझे क्या खाय ॥ २५९ ॥

अर्थ—जो सतसंगी शमदमादि गुणों को जानता है वह तो गुण ही ग्रहण करता है । और गुण को न जानने वाला उसकी निन्दा करता है । बैल को अगर जाय फल दिया जाय तो वह क्या बूझेगा और क्या खायेगा । इसी प्रकार मूढ पुरुष ज्ञान की इज्जत नहीं कर सकता ।

साखी--मुख से तो मिठी कहे, हृदया है मति आन ।
कहहिं कबिर ता लोग से, तैसे राम सयान ॥ २६० ॥

चन्दन सर्प लपेटिया, चंदन काह कराय।
रोम-रोम विष भिनिया, अमृत कहाँ समाय ॥३५॥
भाव—मूर्ख के हृदय में उपदेश की जगह नहीं।

साखी--हीरा पड़ा बजार में, रहा छार लपटाय।
केते मूरख पचि मुये, पारखि लिया उठाय ॥ १६४ ॥
हीरा = आत्म तत्वविवेक। छार = पंचकोषादि।

साखी--हीरा तहाँ न खोलिये, जहँवा खोटी हाट।
सहजे गांठी बांधिये, लगिये अपनी बाट ॥ १६३ ॥
खोटी हाट = कुसंग।

साखी--कलि खोटा जग आंधरा, शब्द न चीन्हे कोय।
जाहि कहो हित आपना, सो उठि बैरी होय ॥ १७७ ॥
कहँहि कबीर कैसे बने, विन करते की दाव।
ई तीनों मिले नहीं, सूरत बोल स्वभाव ॥ ३५१ ॥

अर्थ—कबीर साहेब कहते हैं कि बिना पुरुषार्थ के तत्वज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है। स्वरूपज्ञान, सन्त महात्माओं के साथ प्रिय भाषण तथा दया, क्षमा, सत्य, धीर विचारादि सद्गुणों को अपनाये विना नहीं होता।

साखी--शब्द हमारा आदिका, अति बल दिखा न कोय।
आगे-पीछे जो करे, सो बलहीना होय ॥ ७ ॥
अति बल = पुरुषार्थी।

साखी--समझे की मति एक है, जिन देखा सब ठौर।
कहहिं कबीर वै बीच के, बलकहि और कि और ॥१८२॥

बलकहि = भटकता है, कुछ का कुछ कहता है ।-

साखी--मनुष्य बेचारा क्या करे, जाके शून्य शरीर ।
जो जिय झाँकि न उपजे, काह पुकार कबीर ॥११६॥

झाँकि = विवेक ।

साखी--मनुष्य बेचारा क्या करे, जाके हृदया शून्य ।
श्वनहा चौक बैठाइके, फिर-फिर चाटे चून ॥११९॥

श्वनहा = कुत्ता, लंपट । चौक = सत्संग । चून = विषय पदार्थ ।

साखी--साहू चोर चीन्हे नहीं, अंधा मति के हीन ।
पारखा बिना विनाश है, करू विचार है भीन ॥१४८॥

साखी--फेर परी नहिं अंग में, नहि इन्द्रिन के माँहि ।
फेर पड़ी बूझ में, सो निरुआरे नाहि ॥ ५८ ॥

फेर पड़े नहि.......शरीर में कोइ बाधा नहीं । बुझ = बुद्धि ।

साखी--कैसी गति संसार की, ज्यों गाड़र की गाड़ ।
एक पड़ा जो गाड़ में, सबे पड़े बहि गाड़ ॥२३८॥

गाड़र = भेड़ी । मूढ़ मनुष्य । गाड़ = कुआँ ।

साखी--सबन की उत्पत्ति धरती, सब जीवन प्रतिपाल ।
धरती न जानत आप गुण, ऐसे गुरु विचार ॥२०४॥

साखी--धरती न जानत आप गुण, कभी न होती डोल ।
तिल-तिल गरू ई होती, होती ठीको का मोल ॥२०५॥

गरूई = कठोर । ठीको = हीरा ।

साखी--परदे पानी डाहिया, सन्तो करो विचार ।
शरमा शरमी पचि मुँआ, काल घसीटन हार ॥२२१॥

परदे = ओट से । डाहिया = जलाना । शरमा-शरमी = मान मर्यादा ।

साखी--अपनी कहै मेरी सुने, सुनि मिलि एकै होय ।
हम रहि देखत जग गया, ऐसा मिला न कोय ॥२६५॥

अर्थ--जिज्ञासु बनकर अपने विचार को प्रगट करे और हमारे उपदेश को सुने, परस्पर विचार विमर्श कर एक निश्चय पर आ जावें । तथा हमारा स्मरण कर संसार से उपराम हो जावे, ऐसा कोइ विवेकी नहीं मिला ।

साखी--दृश्यमान सो विनशये, अदृश्यहि लखे न कोय ।
नाहीं कोइ ग्राहक है, जाहि मिले सुख होय ॥३३७॥

दृश्य = संसार । अदृश्य = आत्मा । ग्राहक = जिज्ञासु ।

साखी--जहँ ग्राहक तहँ हौ नहीं, हौं तहँ ग्राहक नाहिं ।
बिनु विवेक भरमत फिरे, पकरि शब्द के छाँहि ॥२८५॥

ग्राहक = जिज्ञासु । हौं = जिज्ञासु । हौं = सद्गुरु । शब्द के छाँहि = गुरुवों की वाणी का सहारा ।

साखी--हाथ कटोरा खोआ भरा, मग जोहत दिन जाय ।
कबिरा उतरा चित्त से, छाँछ दिया न जाय ॥१२५॥

हाथ = हृदय । खोआ = शब्द उपदेश । मग = रास्ता । कबिरा = मूढ़ पुरुष । छाँछ = साधारण विचार ।

साखी--साहेब-साहेब सब कहे, मोहि अंदेशा और।

साहेब से परिचय नहीं, बैठोगे केहि ठौर ॥१७३॥

दृष्टि मांहि विचार है, बूझे विरला कोय।

चर्म दृष्टि छूटे नहीं, ताते शब्दी होय ॥परि० ७॥

दृष्टि = शुद्ध बुद्धि। चर्म दृष्टि = मोटी बुद्धि। शब्दी = वाक् जाल ढोने वाला।

साखी--बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बे तूल।

काह लाल ले कीजिये, बिना बास का फूल ॥२४०॥

बेतूल = व्यर्थ। बास = सुगन्धि।

रमैनी १७--जस जिव आप मिले अस कोई।

बहुत धर्म सुख हृदया होई॥

धर्मात्मा पुरुष को धर्मात्मा के दर्शन से बहुत सुख होता है। किंतु अविवेकी को तो—विषय मोह के फंद छोड़ाई। तहाँ जाय जहँ काट कसाई। आहि कसाई छूरी हाथा। कैसे आवो काटो माथा। भाव है कि अविवेकी विषय त्याग करने पर भी विवेक न होने के कारण वंचक गुरुवा के ही फंदे में पड़ जाता है। जिससे इसका शुद्ध हृदय रूप माथा भ्रमित हो जाता है और यह अनेक कुपंथों में चक्कर काटता है। इसलिये विवेक पूर्वक सद्गुरु की शरण लेना चाहिये।

।। प्रकरण ८ समाप्त ।।

॥ ९ अहंकार ॥

अहंकार मद से भरे व्यक्ति को आत्म ज्ञान नहीं होता।

बसंत ४—सब ही मद माते कोइ न जाग। संगहि चोर घर मूसन लाग ॥१॥ पंडित माते पढ़ी पुरान। योगी माते योग ध्यान ॥२॥ तपसी माते तप के भेव। संन्यासी माते करि हमेव ॥

हमेव = आत्माभिमान।

साखी--माया तजे क्या भया, मान तजा नहि जाय।
जेहि माने मुनिवर ठहे, मान सबन को खाय ॥१९९॥

मान = घमंड।

साखी--जेहि खोजत कल्पो गया, घट ही माही सो मूर।
बाढ़े गर्व गुमान ते, ताते परिगौ दूर ॥२७९॥

मूर = आत्मानन्द।

साखी--बेरा बाँधिन सर्प का, भवसागर के माँहि।
जो छोड़े तो बूड़ई, गहे तो डँसय बाँहि ॥१२५॥

अर्थ—अज्ञानी संसारी लोग संसार समुद्र को पार करने के लिए अहंकार रूपी सर्प का बेड़ा बनाते हैं। अगर विवेक के बिना ही इसे छोड़ते हैं तो इनके शरीर की स्थिति नहीं रहती और अधिक दुर्गति होती है, फिर छूटती भी नहीं। यदि पकड़े रहते हैं तो विवेक वैराग्य से वंचित होते हैं।

प्रकरण ९ समाप्त

॥ १० विषयान्धता ॥

मूढ़ अहंकारी होकर विषय के कीचड़ में फँस जाता है।

साखी--लोहा केरी नावरी, पाहन गरुवा भार।
शिर पर विष की मोटरी, उतरन चाहे पार ॥ २३२ ॥

अर्थ -- इस अज्ञानी ने अपनी जड़ता रूपी लोहे की नाव पर वासना रूपी भार लादा है। और भी विषय रूपी विष की मोटरी इन्द्रिय रूपी सिर पर रख कर संसार समुद्र से पार होना चाहता है।

साखी--भवँर विलम्बा बाग में बहु फूलन की वास।
जीव विलम्बा विषय में, अन्तहुँ चला निरास ॥९६॥
मन स्वारथी आपु रस, विषय लहर फहराय।
मन के चलाये तन चले, ताते सर्वस जाय ॥२३६॥

आपुरस = विषय रस का लोभी। सर्वस = आत्मानन्द।

साखी -- काला सर्प शरीर में, खाइन सब जग झार।
बिरला ते जन बाँचिहै, रामहि भजे विचार ॥१०७॥

काला सर्प = अहंकार।

साखी -- भँवर जाल वकु जाल है, बूड़े बहुत अचेत।
कहँहि कबीर ते बाचि हैं, जाके हृदय विवेक ॥९७॥

भँवर जाल = लौकिक विषय के फंद। वकुजाल = पारलौकिक विषय के फंद।

साखी -- रतन लड़ाइन रेत में, कंकर चुनि चुनि खाय।
कहँहि कबीर पुकारी के, बहुरि चले पछताय ॥२५५॥

रतन = रत्न । रेत = सांसारिक उद्योग । कंकर = विषय पदार्थ ।

साखी — सायर बुद्धि बनाय के, वाम विचक्षण चोर ।
सब दुनिया जहड़े गया, कोई न लागा ठौर ॥११४॥

सायर बुद्धि....... लंपटता बुद्धि को तीक्ष्ण बनाकर ।
वाम = वामिक, वाममार्गी ।

साखी — जरत जरत ते बांचहू, काहु करहु गोहार ।
विष विषया के खायहु, रात दिवस मिलि झार ॥२०३॥

अर्थ—साहेब कहते हैं कि जिस विषय रूपी अग्नि में रात दिन जलते रहते हो उससे बचने के लिये किसी सत्पुरुष की शरण में जाओ ।

साखी — मछरी मुख जस केंचुआ, मुसवन महँ गरदान ।
सर्पन माँह गहेजुआ, ऐसी जात सवन की जान ॥२०४॥

केंचुआ = चारा । गरदान = मुसकारी । गहेजुआ = एक प्रकार की छोटी चिड़िया ।

प्रकरण १० समाप्त

॥ ११ स्वार्थान्धता ॥

यह विषयान्ध पुरुष घोर स्वार्थी और लम्पट होता है ।

साखी—सारा पट्टन जर गया, अपनी-अपनी आग ।
ऐसा कोइ न मीलिया, जासो रहिये लाग ॥ २११ ॥

पट्टन = शहर, संसार के जीव ।

तीन लोक में लागी आग, कहँहि कबीर कहँ जैहौं भाग ॥२०१॥

दिल का महरम कोइ न मीलिया, जो मीलिया सो गरजी।

कहँहि कबीर असमाने फाटा, केतिक सीवे दरजी ॥३११॥

इसका भाव यह है कि—स्वार्थान्ध मन शान्त नहीं हो सकता।

साखी—स्वर्ग पताल के बीच में, दुई तुमरिया विद्ध।

षट दर्शन संशय परी, लख चौरासी सिद्ध ॥२५०॥

दुई तुमरिया = राग द्वेष।

विनु डाँड़े जग डाँड़िया, सोरठ परिया डाँड़।

बाट निहारे लोभिया, गुड़ ले मीठी खाँड़ ॥४८॥

अर्थ—अज्ञानी संसार में निष्प्रयोजन ही दंडित होता है, क्योंकि इसकी जुआ बाजी स्वार्थ सिद्धि के लिये है। अनेकानेक उद्यम भी डाँड़ स्वरूप ही होते हैं, सभी नाश को प्राप्त होते हैं। फिर भी यह मूढ लोभी उत्तरोत्तर वस्तु की आशा लगाये ही रहता है कि अब इससे अच्छी चीज प्राप्त करूँगा।

साखी—अपनी अपनी करि गये, लगे न काहूक साथ।

अपनी कर गये रावण, अपनी दशरथ नाथ ॥२०५५॥

॥ प्रकरण ११ समाप्त ॥

॥ १२ कुसंग ॥

स्वार्थी, लम्पट व्यक्ति अवश्य ही कुसंगी होता है।

साखी—साँचहि कोइ न माने, झूठे के संग जाय।

झूठहि झूठा मिली रहा, अहमक खेहा खाय ॥२०१४॥

अहमक = नाहक । खेहा = धोखा ।

साखी—सज्जन हता दुर्जन भया, सुनि काहू के बोल ।
तामा कांसा होय रहा, हता हिरण्य का मोल ॥२६४॥

हिरण्य = सोना । कुसंग से नीच गति होती है ।

साखी—मारे मरे कुसंग के, ज्यों केला संग बेर ।
वे हालै वे चीरवै, विधिना संग निबेर ॥२४०॥
केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग लागा बेर ।
अबके चेते क्या भया, काट न लीन्हो घेर ॥२४१॥
लोगन करे अथाइया, मति कोई बैठो जाय ।
एकहि खेत चरत है, बाघ गदहरा गाय ॥२८१॥

अथाइया = बैठक । खेत = विचार धारा । गदहा = तमोगुण । बाघ = रजोगुण । गाय = सतोगुण ।

॥ प्रकरण १२ समाप्त ॥

॥ १३ अश्रद्धा ॥

कुसंगियों के हृदय में तमोगुण की प्रबलता होती है । अतः इन्हें संत बचनों में श्रद्धा नहीं होती ।

साखी—जाको मुनिवर तप करे, वेद थके गुण गाय ।
सोई देउ सिखापना, कहे न कोइ पतिआय ॥१२९॥
सांचा शब्द कबीर का, हृदया देखु विचार ।
चित दै समुझे नहीं, मोहि कहत भैल युग चार ॥७९॥

युग चार = सदा से । मोहि = सन्त परम्परा से ।

साखी—साखी कहे गहे नहीं, चाल चली नहि जाय ।
सलिल मोह नदिया बहे, पांव कहाँ ठहराय ।। ८४ ।।

सलिल......अज्ञान रूपी नदी इनके हृदय में बह रही है । पाँव..... बुद्धि रूपी पाँव कैसे स्थिर होंगे ।

साखी—अमृत केरी पोटरी, सिर से धरि उतार ।
जाको मैं एके कहो, सोइ कहे मोहि चार ।।१२८।।

पोटरी = गठरी । अमृत = उपदेश । शिर = हृदय । एके = एक अखण्ड चैतन्य । चार = अनेक बातें ।

साखी—देश विदेशे मैं फिरा, मन ही भरा सुकाल ।
जाको खोजत मैं फिरा, ताका परा दुकाल ।।१७८।।

मन ही = मनमति । सुकेला = बहुतेरा । जाको = जिज्ञासु को । दुकाल = अभाव ।

आस्ति कहो तो कोइ न पतीजे, बिना आस्तिका सिद्धा ।
कहँहि कबीर सुनहु हो संतो, हीरो हीरे गिद्धा ।।२२२।।

आस्ति = यथार्थ बोध । हिरी = झूठ । हीरे = सत् ।

साखी—पूछत बात करे हंकारा, ज्यों आरन वनवड़ हरवारा ।
सांची बात कही मैं अपनी, भया रोष तब लागी कपनी ।।३२८।।

ज्यों......जंगली भैंसे के समान क्रोधित होते हैं ।

रोष = क्रोध ।

साखी—अन्ध भया सब डोले, कोइ न करे विचार ।
कहा हमारा माने नहीं, किमि छूटे भ्रम जार ।।र० ९५ ।।

हमारा = महात्मा का ।

साखी—छौ दर्शन में जो परमाना, तासु नाम बनवारी ।
कहहि कबीर सब खलक सयाना, इनमें हमहि अनारी ॥३२६।

बनवारी = कल्याणकारी । हमहि = महात्मा लोग ॥

॥ प्रकरण १३ समाप्त ॥

॥ १४ संशय ॥

श्रद्धा हीन संशययुक्त ही होते हैं ।

रासुरा संशय गाँठि न छूटे । ताते पकरि-पकरि यम लूटे ॥

शब्द ११० ॥ संशय सावज बसे शरीरा । ते खायल अनबेधल हीरा ॥ र० १८ ॥

अनबेधल = निर्विकार । हीरा = आत्मा । खायल = आवृत्त किया ।

साखी—संशय सब जग खंधिया, संशय खंधे न कोय ।
संशय खंधे सो जना, जो शब्द विवेकी होय ॥९३॥

संशय सावज शरीर में, संगहि खेले जुआर ।
ऐसा धाई बापुरा, जीवहि मारे झार ॥ र०१८ की ॥

धाई = दावगीर । बापुरा = बेचारा जीव । झार = खोजकर।

साखी—साँकठ कोइ न देखिया, सबे बैष्णव झार ।
संशय ते सांकठ भया, कहे कबीर विचार ॥३१५॥

साखी—बेढ़ा दीन्हो खेत के, बेढ़ा खेतहि खाय ।
तीन लोक संशय परी, काहि कहो समुझाय ॥११२॥

बेढ़ा = घेरा ।

साखी—जब लग दिल पर दिल नहीं, तब लगसब सुख नाहिं ।
चारो युगन पुकारिया, सो संशय दिल माँहि ॥परि० १४॥

दिल पर दिल = हृदय में पूर्ण विश्वास ।

साखी—तेरी गति ते जाने देवा, हम में समरथ नाहिं ।
कहँहि कबिर यह भूल सबन की, सब घर संशय माँहि ॥परि० २६

भूल = काल्पनिक देवा देवी का भक्त बनना ।

साखी—रही एक की भई अनेक की, वेश्या बहुत भतारी ।
कहँहि कबिर काके संग जरिहै, बहुत पुरुष की नारी ॥२४७॥

भाव—दुग-दुगी वाले को कहीं स्थिरता नहीं ।

॥ प्रकरण १४ समाप्त ॥

॥ १५ आसक्ति ॥

अविवेकियों के हृदय में घोर आसक्ति हो जाती है ।

साखी—नारी रचन्ते पुरुषा, पुरुष रचन्ते नारि ।
पुरुष ही पुरुषा जो रचे, सो विरले संसार ॥

अर्थ—स्त्री पुरुषों में आसक्त होती है और पुरुष स्त्री में आसक्त होता है, किन्तु मनुष्य अपने आत्म स्वरूप में लगने वाला हो ऐसा पुरुष संसार में कोइ विरला ही होता है ॥

शब्द ७९ ॥ ना हरि भजे न आदत छूटी ।

शब्दहिं सम्रुझि सुधारत नाहीं, अंधरे भये हियहु की फूठी ॥

हियहु की फूटी = हृदय के विवेक रूपी नेत्र भी नष्ट हुए ।

॥ प्रकरण १५ समाप्त ॥

॥ १६ वासना की प्रबलता ॥

विषयों की आसक्ति से हृदय में वासना की स्थिति दृढ़ हो जाती है जिससे जन्म मरण का चक्र बना रहता है ।

साखी—तीन लोक में आइके, छूटि न काहूकी आस ।
एक आन्धरा जग खाया, सबका भया विनाश ॥

अर्थ—तीन लोक के भोग प्राप्त करके भी किसी की वासना नहीं छूटती । कारण कि एक अज्ञान ने ही संसार के विचार को नष्ट कर दिया, जिससे सबका नाश हुआ ।

साखी--सिद्ध भया तो क्या भया, चहूँ दिशी फूटी वास ।
अन्तर वाके बीज है, फिर जामन की आस ॥३४९॥

अर्थ—जप तपादि के बल पर कोई सिद्ध हुआ तो क्या हुआ । ज्ञान के बिना उसकी मनोभिलाषा सर्वत्र फैली है, अनन्त भोगों की वासना है और जब काम्य कर्मों के फल की वासना बीज रूप में उसके हृदय में है तो उसको फिर जन्म लेना निश्चित है ।

साखी--अंकुर ते बीज बीज ते अंकुर, अंकुर बीज ही सुधारे ।
काया ते कर्म कर्म ते काया, विरला जन निरूआरे ॥३५०॥

अर्थ—जिस प्रकार अंकुर से वृक्ष, वृक्ष से बीज, बीज से अंकुर यही बीज वृक्ष परम्परा तब तक चलती रहती है जब तक इसका समूलोच्छेद न हो। इसी प्रकार शरीर और कर्म की परम्परा चलती रहती है। कोई विवेकी ही काम्य कर्मों से निवृत होकर जन्म मरण से मुक्त होता है।

साखी--बाट चढ़न्ती वेलरी, अरुझी आशा फन्द।
टूटे पर जूटे नहीं, भया जो वाचा बन्द ॥३५७॥

अर्थ—पेड़ पर सीधी चढ़ने वाली लता अगर किसी शाखा से उलझ जाय तो वह टूटने पर भी नहीं छूटती। इसी प्रकार लोग, गुरुआ के अनुचित प्रलोभन में पड़कर वाचा बन्ध (शतनामा) होने से उसमें दोष देखते हुए भी उसे नहीं छोड़ते।

साखी--नव मन दूध बटोरि के, टिपके किया विनाश।
दूध फाटि काँजी भया, भया घीव का नाश ॥१८९॥

नव मन......सभी इन्द्रियों के समाहित होने पर भी। टिपके......किंचित वासना से ही। दूध फाटि......साधना छिन्न-भिन्न होकर। काँजी = फटौन, बर्बाद। घी = ज्ञान।

साखी--अलख जो लागा पलक में, पलक हि में डसि जाय।
विषहर मंत्र न माने, गारुड़ काह कराय ॥२०३१॥

अर्थ—अज्ञानी के मन में जब इन्द्रिय सुखासक्ति घर कर जाती है। तब वह ज्ञानोपदेश पर ध्यान नहीं देता,

तो उसे सद्गुरु क्या कर सकते हैं।

साखी--ज्यों मुदाद समशील की, सब एक रूप समाहि।
कहहिं कबीर सावज गति, तब की देखी भुकाहि ॥३९॥
देखहु शील मुदाद की, प्रीति करे बलजोर।
तीन लोक की मूरति, ता में दीसे मोर ॥ ४० ॥

अर्थ—मुदाद नाम के हरे पत्थर में सभी पदार्थ मोर जैसे भासते हैं, कुत्ता उसे शिकार समझ कर भूँकता है। साहेब कहते हैं कि यह मुदाद की प्रबल प्रकृति है जो उसमें प्रतिबिम्बित सभी पदार्थों को मोर जैसा करती है। इसी प्रकार वासना की प्रबलता से अविवेकियों को सभी पदार्थ विषय रूप ही भासते हैं।

साखी--बूँद जो पड़ी समुद्र में, सो जाने सब कोय।
समुद्र समाना बूँद में, बूझे विरला कोय ॥७३॥
समुद्र......समुद्र भाव रूप से बूँद में रहता है ॥

॥ प्रकरण १६ समाप्त ॥

॥ १७ वंचकता ॥

स्वार्थी व्यक्ति--लंपट, मिथ्यावादी व पूरा ठग होता है।

साखी--नारी कहावे पीव की, रहे और संग होय।
जार मीत हृदया बसे, खसम खुशी क्यों होय ॥परि०५॥

भाव है कि व्यभिचारी स्त्री की तरह वंचक भक्त आत्मारामी नहीं हो सकता।

साखी--सांच कहो तो मारिया, झूठे लागु पियारी।
मो शिर डारे धूरि, सींचे और कियारी ॥ परि० ६ ॥
भाव —वंचक बड़े पुरुष का बहाना लेकर अपना कार्य करता है।

साखी—रामहि सुमिरे रण मरे, फिरे और कि गैल।
मानुष केरी खोलरी, ओढ़े फिरे बैल ॥२८०॥
मुँह से राम कहता है और बात-बात में दंगा करता है और विषयों की खोज में इधर उधर भटकता है। ऐसा व्यक्ति मनुष्य का शरीर धारण किया हुआ बैल ही है।

साखी--राम रहे वन भीतरे, गुरु की पूजि न आस।
कहँहि कबीर पाखण्ड सब, झूठे सदा निरास ॥परि० ३२॥
वन = पंच कोष। पाखण्ड-गुरु सेवा से हीन वंचक।

प्रकरण १७ समाप्त

॥ १८ ब्राह्मण का पाखण्ड ॥

ब्राह्मण कहाने वाले स्वार्थी पाखण्डी लोगों ने जन-साधारण में अपनी धूर्तता का महाजाल बिछाकर भोली जनता को शिकारी की तरह फँसा लिया है, उनकी काली करतूत को देखिए।

बिप्रमतीसी—

ब्राह्मण ह्वै के ब्रह्म न जाने। घर में जगत पतिग्रह आने ॥१॥

जो सीरिजा तेहि ना पहिचाने । कर्म भर्म ले बैठि बखाने ॥२॥
पाप पुण्य के हाथे पासा । मारि जगत का कीन्ह विनाशा ॥३॥

हाथे पासा = हाथ में पासा लिये ।

रमैनी १४—ब्राह्मण कीन्हे ग्रन्थ पुराना । कैसे के मोहि मानुष जाना ॥

॥ प्रकरण १८ समाप्त ॥

॥ १९ कल्पित कर्म ॥

पाखंडी अपने कल्पित कर्म द्वारा महान् अनर्थ करते हैं ।

रमैनी ३२—सुस्मृति आहि गुणन के चीन्हा ।

पाप पुण्य के मारग कीन्हा । सुस्मृति वेद पढ़े असरारा ।
पाखण्ड रूप करे हंकारा । पढ़े वेद औ करे बड़ाई ।
संशय गांठ अजहूं न जाई ॥

असरारा = हठ ।

रमैनी ३४—वेद की पुत्री स्मृति है भाई । सो जेवरी कर लेतहि आई ।। आपहु वरि आपु गर बँधा । झूठा मोह काल के फंदा ।। बाँधत बंधन छोड़ि न जाई । विषय स्वरूप भूले दुनियाई ॥ हमराहि देखत सकल जग लूटा । दास कबीर राम कहि छूटा ॥

सो जेवरी = कल्पित कर्म में बाँधने के लिये अनुचित नियम ।

रमैनी ३५—पढ़ि पढ़ि पण्डित करु चतुराई ।

निज मुक्ति मोहि कहु समुझाई । कहँ बसपुरुष कहाँ सो गाऊँ। पंडित मोहि सुनावहु नाऊँ ।। चारि वेद ब्रह्मा निज ठाना। मुक्ति का मार्ग उनहुँ नहि जाना ।। दान पुण्य उन बहुत बखाना । अपने मरण की खबर न जाना ॥

ब्रह्मा = ब्राह्मणों के आदि गुरु ।

रमैनी ३६—पण्डित भूले पढ़ि गुणि वेदा । आप अपुन पौ जानु न भेदा ।। संध्या तर्पण औ षट कर्मा । ई बहु रूप करेहिं अस धर्मा । गायत्री युग चारि पढ़ाई । पूछहु जाय मुक्ति किन पाई । अवगुण गर्व करो अधिकाई । अधिके गर्व न होय भलाहि ।। जासु नाम है गर्व प्रहारि । सो कस गर्व हि सकै सम्हारी ।।

स्वरूपानुभव के बिना ही लोग अज्ञान वश दुष्कर्म करते हैं।

शब्द ५२—रामहि गावे औरहि समुझावे हरि जाने बिन विकल फिरे । जा मुख वेद गायत्री उचरे, जाके वचन संसार तरे । जाके पाँव जगत उठि लागे सो ब्राह्मण जीववध करे।।१।। अपने ऊँच नीच घर भोजन, हीन कर्म करि उदर भरे ।। ग्रहण अमावस ढुकि ढुकि मांगे, कर दीपक लिये कूप पड़े ।।२।। एकादशि व्रत का मर्म न जाने, भूत प्रेत हठि हृदय धरे । तजि कपूर गांठी विष बांधे, ज्ञान गमाये मुग्ध फिरे ।।३।। छीजे साहू चोर प्रति पाले, संत जना से कूट करे । कहँहि कबीर जिह्वा के लंपट, यह विधि ब्राह्मण नर्क परे ।।४।।

ढुक्कि ढुक्कि=दौड़-दौड़ कर। कूप = अज्ञान नर्क। एका-दशिक = दस इन्द्रिया और एक मन। कपूर = ज्ञान वैराग्य। विष = विषय वासना। साहू = सच्चा पुरुष। चोर = ठग पाखण्डी।

प्रकरण १९ समाप्त

॥ २० हिंसकता ॥

पाखण्डी लोग धर्म के नाम पर घोर हिंसा करते हैं, इसलिए साहब ने इन्हें चतुर कसाई कहा है।

शब्द ५६—सन्तो पांड़े निपुण कसाई। बकरा मारि भैंसा पर धावे, दिल में दर्द न आई ॥ १ ॥ करि स्नान तिलक दे बैठे विधि से देवी पुजाई ॥ आतम राम पलक में विनशे; रुधिर की नदी बहाई ॥ अति पूनीत ऊँचे कुल कहिये, सभा माँहि अधिकाई ॥ इन ते दीक्षा सब कोई माँगे हँसी आवे मोहि भाई ॥३॥ पाप कटन की कथा सुनावे, कर्म करावे नीचा। हम तो दोउ परस्पर देखा, यम लाये हैं खींचा ॥४॥ गाय वधे ते तुरुक कहिये, इनते क्या वे छोटे ! कहँहि कबीर सुनो हो संतो, कलि में ब्राह्मण खोटे ॥५॥

शब्द ५४—पांड़े अचरज एक बड़ होई। एक मरि मुये अन्न न खाई, एक मरि सीझे रसोई ॥१॥ करि स्नान देवन

की पूजा, नौ गुण काँध जनेऊ। हाड़ी हाड़ हाड़ धारी मुख भल षट कर्म बनेऊ ॥२॥ धर्म कथे जहँ जीव बधे तहँ, अकर्म करे मोरे भाई। जो तोहरा को ब्राह्मण कहिये काको कहिय कसाई ॥३॥ कहँहि कबीर सुनो हो संतो भरम भूलि दुनियाई। अपरम्पार पार पुरुषोत्तम या गति विरले पाई ॥४॥

अपरं...... इन घोर पापाचारी तथा कथित ब्राह्मणों से हटकर कोइ विरले विवेकी ही ब्रह्म तत्व को समझ पाते हैं।

शब्द ५७—यह भ्रम भूत सकल जग खाया। जिन-जिन पूजा तिन जहँडाया ॥१॥ अंड न पिंड प्राण नहि देहा। काटि-काटि जीव कौतुक एहा ॥२॥ बकरी मुरगी दीन्हो छेवा। आगिल जन्म उन औसर लेवा ॥ ३ ॥ कहँहि कबीर सुनो नर लोई, भूतवा के पूजले भूतवे होई ॥४॥

अंड न पिण्ड = इन कल्पित देवताओं के शरीर, इन्द्रिय प्राणादि कुछ नहीं है फिर भी इनके नाम पर प्रत्यक्ष चेतन जीव को हनन करता है, इसी लिए साहेब फिर कहते हैं—

रमैनी ३२—पढ़े सत्य से जीव वध करई। मूड़ि काटि अगमन धरई ॥ सत्य......शास्त्रादि।

साखी – कहँहि कबीर ई पाखण्ड, बहुतक जीव सताव।

अनुभव भाव न दरशाये, जियत आपु रखाव ॥

अनुभव स्वरूप आत्मा को न जानने से इनका जीवन बर्बाद हो जाता है।

शब्द ५५—जस मांस पशु कि तस मांस नर की रुधिर-रुधिर एक सारा जी। पशु के मांस भखे सब कोई नर हि न भखे सियारा जी ॥१॥ ब्रह्म कुलाल मेदिनी भइया, उपजि विनशि कित गइया जी। मांस मछरिया जो पै खइया ज्यों खेतन में बोइया जो ॥२॥ माटि के करि देवा देवी काटि काटि जोव देइया जी। जो तोहरा है साँचा देवा, खेत चरत किन लेइया जी ॥३॥ जो कुछ किये जिह्वा के स्वारथ, बदल पराया देइंया जी। कहँहि कबीर सुनहु हो सन्तो, राम नाम नित लेइया जी ॥४॥

० ब्रह्म कुलाल......ब्रह्म रूप कुम्हार के द्वारा सभी प्राणी पदार्थ सभी अपने-अपने समय पर उत्पन्न व नष्ट होते रहते हैं (किसो जीव के शरीर का नाश करने का अधिकार किसी को नहीं।)

॥ प्रकरण २० समाप्त ॥

॥ २१ जातीयता ॥

पाखण्डी लोगों ने (तथा कथित ब्राह्मण) विश्व की जनता के साथ घोर अत्याचार कर जो जातीयता का ढंग रच रक्खा है जिससे सारा समाज छिन्न भिन्न हो गया है उन पाखण्डियों को समझाते हुए साहेब कहते हैं—

रमैनी ६२ —जन्मत शूद्र मुये पुनि शूद्रा, कृतम जनेउ

डारि जग मुद्रा ॥१॥ जो तुम ब्राह्मण ब्राह्मणी के जाया और राह दे काहे न आया ॥२॥

अर्थ—हे पण्डितों ! जो तुम जन्म से ही जाति का विचार करते हो तो सभी जन्म काल में शूद्र ही रहते हैं और मरने पर भी ब्राह्मणों का कोई चीन्ह साथ जाता नहीं । बीच में ही कल्पित जनेउ गले में डाल कर संसार को ब्राह्मणत्व का चिन्ह दिखाकर ठग रहे हो । जो तुम कहते हो कि ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, शूद्र, मुख, बाहु, जंघा, औ पैर से पैदा हुए । इस नियम से अगर तुम ब्राह्मण हो तो तुम्हें मुख से ही पैदा होना चाहिये । ऐसा देखने में नहीं आता अतः ऐसा कहना तुम्हारी भूल ही है ।

र० २—पेटहि काहू न वेद पढ़ाया । सुन्नत कराय तुरुक नहि आया ॥१॥ नारी मोचित गर्भ प्रसूती । स्वांग घरे बहुते करतूती ॥२॥ तहिया हम तुम एकै लोहू । एकै प्राण बिआपे मोहू ॥३॥ एकै जनी जना संसारा । कौन ज्ञान से भयउ निन्यारा ॥४॥

रमैनी २६—गुप्त प्रगट है एकै दूधा । काको कहिये ब्राह्मण शूद्रा ॥५॥ झूठे गर्व भूले मत कोई । हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई ॥६॥

अर्थ—यह जो तुम कहते हो कि वेद पढ़ने का अधिकार मात्र ब्राह्मण को है तो पेट से ही पण्डित बनकर क्यों नहीं

आये। ईसी प्रकार मुसलमान भी कहते हैं कि सुन्नत कराना खुदा का हुक्म है तो खुदा का चाहिये था कि गर्भ में ही बच्चों की इन्द्री की खोलरी को ही नहीं बढ़ाता। वायु से प्रेरित होकर गर्भ से बाहर आने के पश्चात सयाने होने पर नाना स्वांग रचकर कौतूहल मचाते हो। साहेब कहते हैं कि शूद्र व ब्राह्मण का एक ही रक्त है दोनों के शरीरों में एक ही प्रकार का प्राण भी व्याप्त है तथा संसार की पैदाइश भी एक ही प्रकृति देवी से होती है तो फिर तुम किस ज्ञान से अपने को अलग मानते हो। सूक्ष्म या स्थूल किसी भी दृष्टि से एक ही आत्मा है तो तुम किसको ब्राह्मण, शूद्र कहते हो। इसलिये हे पण्डितों मिथ्याभिमान में मत भूलो। हिंदू मुसलमान दोनों कथन मात्र हैं।

शब्द ८२.—एके त्वचा हाड़ मल सूत्रा, एक रुधिर एक गुदा। एक बूँद से सृष्टि रच्यो है, को ब्राह्मण को शूद्रा॥१॥ रजगुण ब्रह्मा तम गुण शंकर, सत्व गुणी हरि सोई। कहंहि कबीर राम रमि रहिये हिंन्दू तुरुक न कोई॥२॥

अर्थ—शूद्र ब्राह्मण सबके शरीर में चर्म, हड्डी, मल, मूत्र रूधिर और मांस आदि सभी एक जैसे हैं तथा रचना भी एक जैसी है फिर ब्राह्मण शूद्र का भेद कैसे हुआ॥१॥ सत्व-रज-तम यही त्रिगुणात्मक संसार है अतः साहेब कहते हैं कि इन तीनों के अधिष्ठाता राम में रमण करो। हिंदू तुरुक यह भेद

सत्य नहीं, मिथ्या काल्पनिक है । (त्रिम०) ऊंच नीच है मध्य वाणी । एके पवन एक है पानी । एके मटिया एक कुम्हारा । एक सबन का सृजन हारा ॥ एक चाक एक चित्र बनाया । नाद बिंद के मध्य समाया ॥३॥

अर्थ—तुम अज्ञान प्रवाह में ऐसे बूड़े कि तुमको कुछ भी बोध न रहा, फिर ऊँच-नीच की अनुचित भावना रखकर तुम किसका सत्कार या तिरस्कार करते हो ॥२॥ अनुचित जाति भावना से ऊँच नीच का विचार गलत है, क्योंकि सबके शरीर एक ही पवन पानी आदि पाँच तत्वों से बने हैं ॥ १ ॥ सबका शरीर पाञ्चभौतिक एवं त्रिगुणात्मक है ।

सबका रचयिता (व्यापक एक सकल में ज्योति) भी एक ही माया विशिष्ट ईश्वर है । सभी शरीर रूप चित्र माता के गर्भाशय रूप चक्र पर तैयार हुए हैं और माता पिता के रज वीर्य के अन्दर ही सबका शरीर समाया है अर्थात इसी का कार्य शरीर है ।

वि प्र०—व्यापी एक सकल की ज्योती । नाम धरे का कहिये भौती । राक्षस करनी देव कहावे, वाद करे गोपाल न भावे ॥ हंस देह तजि न्यारा होई । ताकर जात कहहु दहु कोइ ॥ श्वेत स्याह कि राता पियारा । अवरण वरण को ताता सियरा ॥

अर्थ—सबके शरीर में एक ही चैतन्य ज्योति समायी

हुई है फिर उसके अनेक काल्पनिक नाम धरने से क्या वह भौतिक हो जायगी ? कदापि नहीं । क्योंकि वह पच भूत से सर्वथा भिन्न है । महातामसी कर्म करके भी देवता कहलाते हुए मिथ्यावाद विवाद करते फिरते हैं । आत्म ज्ञान इन्हें प्रिय नहीं । जब यह हंस शरीर छोड़कर अलग होता है तब इसकी कौन सी ब्राह्मणादि जाति कहोगे । सफेद, काला, लाल, पिला कौन रंग कहोगे । रूप निरूप, गर्म, सर्द किस नाम से पुकारोगे ।

साखी--बड़े बूड़े बड़ापने, रोम रोम हंकार ।
सतगुरु के परिचय बिना, चरो वर्ण चमार ॥१९३॥
मानुष का गुण ही बड़ा, मांस न आवे काज।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजन बाज ॥२०३॥

प्रकरण १२ समाप्त

॥ २२ अस्पृश्यता ॥

पाखण्डी पंडित छूत का ढकोसला रचकर सदाचारी पुरुषों का भी अनुचित रूप से तिरस्कार कर अपने को ऊँचा मानता है, उसके प्रति साहब कहते हैं—

शब्द ।१३। पंडित देखहु मन महँ जानी । कहूँ दहूं छूत कहाँ ते उपजे, तबहि छूत हि तुम मानी ॥१॥ नादे बिंद रुधिर मिलि संगे, घट हि में घट सुपजे ॥ अष्ट कमल है पुहमी आया,

छूति कहाँ ते उपजे ॥२॥ लख चौरासी नाना वासन; सो सब सरि भौ मांटी । एकै पाट सकल बैठाये, सिंचि लेत दहूँ काटी ॥३॥ छूत हि जेवन छूत हि अंवचन, छूतहि कर्म उपाया । कहँहि कबीर ते छूत विवर्जित, जाके संग न माया ॥४॥

नाद बिंद = माता के नाद कमल से ।

घट ही······सभी के शरीर की उत्पत्ति है । अष्ट कमल= मूला धार के पास योनी द्वारा । लख ··· चौरासी लाख जीवों के शरीर । एकै पाट ··· एक ही पृथ्वी पर । सीचे ··· क्या पृथ्वी को काटकर देह सींचते हों । छूतहि ··· सारा कर्म छूत मय है । उपाया ··· कारण पंच भौतिक । माया शरीराभिमान कामादि विकार ।

शब्द ५३—पाँड़े वुझि पियहु तुम पानी । जा मटिया के घर में बैठे, ता में सृष्टि समानी ॥

भाव है कि इस शरीर में संसार के सारे विकार भरे पड़े हैं, इससे कोइ सदाचारी ही शुद्ध कहला सकता है, भ्रष्टाचारी नहीं, भ्रष्टाचारी से ही छूत मानना चाहिये ।

रमैनी ३६—और के छूये लेत है सींचा । तुपते कहहु कौन है नीचा । अवगुण गर्व करहु अधिकाई । अति के गर्व न होय भलाई ॥ जासु नाम है गर्व प्रहारी, सो कस गर्वहिं सकै सम्हारी ॥३॥

गर्व प्रहारी = घमण्ड को तोड़ने वाला ।

भाव है कि अनुचित छूत मानने वाले ही नीच हैं, उनका अन्याय गर्व प्रहारी परमात्मा बर्दाश्त नहीं कर सकता। स्वयं भ्रष्ट होकर सदाचारी से छूत मानने वाले की अधोगति होगी।

॥ प्रकरण २२ समाप्त ॥

॥ २३ मुस्लिम पाखण्ड ॥

अब मुसलमानों के भी पाखण्ड कहते हैं—मुसलमान कहते हैं कि बच्चे की सुन्नत कराना खुदा की आज्ञा है। इस पर कहते हैं कि—

"जो खुदाय तब सुन्नत करता, आपुहि काटि न आई॥"

शब्द ८५॥ अर्थात् खुदा की इच्छा होती तो इन्द्री की चमड़ी ही नहीं बढ़ता। इसी प्रकार बकरा, भैंसा, गौ आदि मारना भी खुदा की आज्ञा नहीं है। साहेब कहते हैं कि—बकरी मुर्गी किन फरमाया। किसके कहे तूँ छूरी चलाया। दर्द न जाने पीर कहावे। बैता पढ़ि-पढ़ि जग समुझावे॥ कहँहि कबीर सैयाद कहावे। आप सरीखे जग कबुलावे॥

रमैनी ४९॥ बैता—मुसलमानों की एक किताब। भूला वे अहमक नादाना जिन हरदम राम नहीं जाना। बर बस आनि के गाय पछारिन, गला काटि जिव आप लिया। जीयत जीव मुरदा करि डारे, ताको कहत हलाल किया॥ शब्द ९४॥ तुरुक रोजा निमाज गुजारे, बिस्मल बांग पुकारे।

इनकी विहिस्त कहाँ से होइ है, सांझे मुरगी मारे ॥ शब्द २३ ॥
क्या मूड़ी भूमि शिर नाये, क्या जल देह नहाये ।
खून करहु मिस्कीन कहावहू, अवगुण रहहु छिपाये ।
क्या उज्जू जप मज्जन किये, क्या मस्जिद शिर नाये ॥
हृदया कपट निमाज गुजारहु, क्या हज मक्का जाये ॥शब्द५१॥
गई स्याही आइ सफेदी, दिल सफेद अजहूँ न हुआ ।
रोजा निमाज बंग क्या कीजे, हुजरे भीतर पैठि मुआ ॥
शब्द २४ ॥ हबी नबी नबी के कामा । जहँ लगि अमल सो सबे हरामा ॥

रमैनी ४७ ॥ हरदम=सभी प्राणियों में । बांग=जोर से शब्द करना । बिहिस्त = स्वर्ग । मूड़ी = मुण्डित । नाये = झुकना । मिस्कीन = फकीर । उज्जू = इन्द्रिय शुद्धि । स्याही= केश का काला पन । सफेदी=उसका उजला होना । हुजरे = मस्जिद की एकान्त कोठरी । अमल = काल्पनिक धर्म । हरामा = निषिद्ध ।

साखी--दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय ।
यह खून वह बन्दगी, क्यों कर खुशी खुदाय ॥

रमैनी ४९---दर की बात कहो दरवेशा । बादशाह है कौने भेषा । कहाँ कूच कहाँ करे मुकामा । कौन सुरति का करो सलामा ॥ मैं तोहि पूछो मुसलमाना लाल जर्द की नाना बाना । काजी काज करहु तुम कैसा । घर-घर जबह करावहु भैसा ॥ इसी प्रकार रमैनी ३९ की साखी में कहते हैं--

पानी पवन संयोग के, रचिया ई उत्पात ।
शून्य ही सूरत समाय के, कासो कहिये जात ॥

पानी = वीर्य । पवन = प्राण । उत्पात = शरीर की उत्पत्ति । शून्य हि ''' वृत्ति को शून्य करने पर अर्थात स्वरूप स्थिति होने पर हिंदू मुसलमान कुछ कहा नहीं जाता ।

साखी--संयोगे का गुण रवै वियोगे का गुण जाय ।
जिह्वा स्वाद के कारणे, नर कीन्हें बहुत उपाय ॥रमैनी ५० ॥

संयोग = शमदमादिक । रवै = प्रकाशित होता है । वियोग = उससे रहित । इसी प्रकार रमैनो ४०, ४९ । शब्द २३, २४, २५, २६, ५०, ५१ भी द्रष्टव्य हैं ।

॥ प्रकरण २३ समाप्त ॥

॥ २४ जैनादि मत समीक्षा ॥

रमैनी ३० वै भूले षट दर्शन भाई । पाखंड भेष रहा लिपटाई
जीव शिव का आहि नशौना । चारो वेद चतुर गुण मौना ॥२
जैनी धर्मक मर्म न जाना । पांति तोरि देव घर आना ॥३
दवना मरुआ चम्पक फूला । मानो जीव कोटि सम तूला ॥४
औ पृथ्वी के रोम उपारे । देखत जन्म आपनां हारे ॥५
मन मथ बिंद करे असरारा । कल्पै बिंद खसै नहिं द्वारा ॥६
ताकर हाल होय अदबूदा । छौ दर्शन में जैनि बिगूता ॥७

छौ दर्शन = जोगी, जंगम, सेवरा, संन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण । जीव-शिव= जीव के कल्याण । मौना = वृद्ध । जीव

कोटि सम = अनन्त जीवों के समान है। मन्मथ........सिद्धि के लोभ में अधिक दिनों तक उपवास करके स्त्री से संभोग करता है तो बूँद गिरता नहीं, और इन्द्रियों के भीतर कलपता है। उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। इसी प्रकार शरीर के बाल नोचवाले जैनी विगूता = भूले हुए हैं।

परिणामवाद

(जैन मत के साथ ही यह भी है)।

शब्द ८८—जो पै बीज रूप भगवाना। तो पंडित का पूछो आना ॥ कहँ मन कहँ बुद्धि कहँ हंकार। सत् रज तम, गुण तीन प्रकार ॥२॥ विष अमृत फल फले अनेका, बहुधा वेद कहै तरवेका ॥३॥ कहँहि कबीर तैं मैं का जाना। को दहुँ छूटल को अरुझाना ॥४॥

भाव है कि वृक्ष बीज की तरह सारा संसार भगवान रूप ही है तो मुक्ति के लिए कोई भी प्रयत्न व्यर्थ है। मनादि को भी वश में करने की आवश्यकता नहीं सब भगवान् ही भगवान होने से।

प्रकरण २४ समाप्त

॥ २५ तीर्थ वाद ॥

लोगों की आम धारणा हो गयी है कि तीर्थ जायेंगे तो सब पाप कट जायेंगे। इस पर साहेब कहते हैं—

साखी--तीरथ गए तेइ जना, चित खोटा मन चोर ।
एको पाप न काटिया । लादे दस मन और ॥ २१८ ॥

साखी--तीर्थ भई विष बेलरी, रही युगहुं युग छाय ।
कबीरन मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाय ॥ २१७ ॥

बेलरी = लत्ती । युगहु-युग = सदा से । कबीरन = तीर्थ प्रशंसक । मूल = शम दमादिक । निकंदिया = नष्ट कर दिया । हलाहल = विषैले वातावरण ।

साखी—तीर्थ गये ते बहि मुये, जुड़े पानी नहाय ।
कहँहि कबीर पुकारिके, राक्षस होय पछताय ॥२१६॥

तीर्थ = कल्पित तीर्थ । बहिमुये = भेड़िया धसानी चाल में पड़े । राक्षस = तम बुद्धि । और भी कहते हैं ।

शब्द ४७—क्या काशी क्या मगहर ऊसर । जो पै हृदय राम बसे मोरा । जो काशी तन तजे कबीरा । तो रामहि कौन निहोरा ॥

भाव है कि जब काशी मरण से मुक्ति हो तो कोइ भजन साधन की आवश्यकता नहीं । किंतु "नान्यः पंथा विद्यते ऽनाय" इस उक्ति के अनुसार जब हृदय में राम बस रहा है तो काशी आदि की आवश्यकता नहीं ।

प्रकरण २५ समाप्त

॥ २६ मूर्तिवाद ॥

कोई मूर्त्ति को ही ईश्वर मानकर उस पर न्योछावर हो

जाते हैं। पाखण्डियों ने उसके नाम पर कितना भारी ठगी का व्यापार कर डाला है, उसे आज कहने की आवश्यकता नहीं। ऐसा अंधा धुन्ध व्यवहार चल पड़ा है कि लोग कुत्सित कर्म करके भी कहते हैं कि भगवान के दर्शन मात्र से ही सभी पाप कट जायेंगे इस विषय में साहब कहते हैं—

पीतर पाथर पूजन लागे, तीर्थ गर्व भुलाना ॥ शब्द२२॥

बहुत लोग तीर्थ मूर्ति के बल पर अत्याचार को कुछ गिनते ही नहीं। इसलिए साहेब कुछ कहते हैं—

साखी—कबिरन भक्ति बिगाड़िया, कंकर पत्थर धोय।
अंदर में विष डारिके, अमृत डारिन खोय ॥ २४६ ॥

अर्थ—साहेब कहते हैं कि इन भ्रान्ता-चार्यों ने कंकड़ पत्थर धो-धोकर भक्ति की राह बिगाड़ दी, जिसके चलते आतमा राम को न पहचानकर मूर्ति सेवा में ही अपना जन्म गवां दिया अर्थात् इनके हृदय से आत्मतत्व का ज्ञान दूर होकर जड़ भावना ही सर्वदा बनी रह जाती है। कोई-कोई महापापी मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसके सामने बकरे भैंसे काटते हैं। साहब कहते हैं—

माटी के करि देवा देवी, काटि-काटि जीव देइया जी।
जो तोहरा के साँचा देवा, खेत चरत किन लेइया जी ॥

इस प्रकार देखा जाता है कि पण्डित भी मूर्ख की तरह स्थूल सूक्ष्म कल्पित भावना में फँसा, हुआ सत्य

से कितना दूर पड़ा है। उसे राह पर लाने के लिए साहब ज्ञान का उपदेश करते हैं।

सब घट एकै प्राण है, चोट काहि पर डारो ।।३४१।।

जहँ लगि जग महँ रूप आपनो, सो सब रूप तुम्हारा ।।श०६५१

अर्थ—संसार में जहाँ तक प्राणी हैं, सभी तुम्हारा रूप है तथा परमात्मा का ही अंश है इस प्रकार साहब ने आत्म समानता का उपदेश देकर वैषम्यवाद को दूर करने का यत्न किया है।

प्रकरण २६ समाप्त

॥ २७ भेष-रेख ॥

बहुत से अविवेकी लोग कंठी, माला, छाप तिलक वगैरह अनेक किस्म के स्वांग रचकर साधु या भक्त बनने का दावा करते हैं। उनके प्रति साहब कहते हैं।

साखी –कर बंदगी विवेक की, भेष धरे सब कोय।

सो वन्दगी बहि जाने दे, जहँ शब्द विवेक न होय ।।३३१

साखी–कबीर भ्रम न भागिया, बहुविधि धरिया भेष।

साँई के परिचावना, अंतर रहि गई-रेख ।।४७।।

रेख = अज्ञान की कालिमा।

शब्द ९२--माला पहिरे टोपी पहिरे छाप तिलक अनुमाना।

साखी शब्दे गावत भूले, आतम खबरि न जाना ।।

प्रकरण २७ समाप्त

॥ २८ अवतार ॥

कुछ लोग परम ब्रह्म के चौबीस अवतार मानते हैं। इसका निषेध करते हुए साहब कहते हैं—

रमैनी ७५—तेहि साहब के लागहु साथा, दुई दुख मेटि के होउ सनाथा ॥ १ ॥ दशरथ कुल अवतरि नहीं आया। नहीं लंका के राव सताया। पृथ्वी रमन धमन नहीं करिया। पैठि पाताल नहीं बलि छलिया ॥ ४ ॥ नहीं देवकी के गर्भहि आया। नहीं यशोदा गोद खेलाया। नहीं बलि राजा से मारल रारि। नहि हिरनाकुश बधल पछारी ॥५॥ बाराह रूप धरणि नहिं धरिया। क्षत्रिय मारि निक्षत्रिय न करिया ॥६॥ नहि गोवर्धन कर गहिं धरिया। नहि ग्वालन संग बन-बन फिरिया ॥ ७ ॥ गंडक शाल ग्राम नहि कूला। मच्छ कच्छ होय नहि जल डोला ॥ ८ ॥ द्वारावती शरीर न छाँड़ा। लै जगन्नाथ पिंड नही गाड़ा ॥ ९ ॥ अर्थात् परमात्मा के सर्वव्यापक होने से उसको आने जाने की क्रिया बनता नहीं। वह अपनी सत्ता से सबकी रक्षा करता है।

शब्द ३—संतो आवे जाय सो माया, है प्रतिपाल काल नहि वाके ना कहूँ गया न आया।

सभी अवतार माया का खेल है।

दस अवतार ईश्वरी माया, कर्त्ता के जिन पूजा।

रामचन्द्र स्वयं ब्रह्म के चिंतक थे। वे रघुनाथ एक को को सुमिरे, जो सुमिरो सो अंधा। शब्द ३॥

साखी--माया ते मन उपजे, मन ते दस अवतार।
ब्रह्म विष्णु धोखे पड़े, भ्रम पड़ा संसार ॥परि० २२॥
कृष्ण समीपी पांडवा, गले हिमालय जाय।
लोहा को पारस मिले, काहे को काई खाय ॥२३३॥

कृष्ण अगर सच्चे परमात्मा, होते तो अर्जुन को नरकादि का भोग नहीं करना पड़ता। अर्थात् सर्वत्र व्यापक परिपूर्ण जो परमात्मा है वह साढ़े तीन हाथ में कैसे आबद्ध हो सकता है, कदापि नहीं। असीम सत्ता को सिमटकर माता के पेट में आ जाने की भावना कितनी अज्ञान मूलक है। आकाश को बगल में डाल लेने के समान अज्ञतम की कल्पना है। यह भगवान् का गुणानुवाद नहीं, ठिठोली करना है। अगर कहे कि भक्ति वश भगवान् भक्तों को साकार रूप से दर्शन देते हैं तो भावुकों को वैसा प्रतीत हो सकता है, चित्त जिस विषय में एकाग्र होता है उसी रूप से प्रतीत होने लगता है। भिन्न कोई वस्तु नहीं, भ्रम से दूसरा भासता है।

सर्व सत्ता नहीं सिमटती। कोई तपस्या करके उन्हें पुत्र होना मान लेते हैं। कोई नर लीला मानते हैं। कोई राक्षसों के नाश के लिए मानते हैं, यह सब मनो भावनाएँ मात्र है। संकुचित भावना भक्ति का रूप नहीं हो सकती। ब्रह्माण्ड रूप

लीला सदैव सिद्ध है। संसार में शान्ति लाने के लिए महापुरुषों का आविर्भाव होता है। यह पहले ही कहा जा चुका है। चौबीस ही अवतार हो कोई जरूरी नहीं। अवतारों से भी अमर्यादित काम हुआ है। यह पुरानों से सिद्ध है। गम्भीरता से सोचने योग्य बात यह है कि कहीं परमात्मा ने (राम कृष्ण आदि होकर) आस्तिकता का उपदेश किया और कहीं (बुद्ध होकर) नास्तिकता का उपदेश किया। यह कैसी मर्यादा है। नास्तिक, आस्तिक, हिंसक, अहिंसक, मूर्त्तिभंजक को आपस में लड़ाकर परेशान करना, क्या यही भगवान का काम है। अगर आप तटस्थ होकर ग्रंथों का विवेचन करें तो सत्य का पता लग जायगा। पूरा निर्णय करने में ग्रन्थ वृद्धि का भय है। इसलिए मात्र संकेत किया है। अगर कहें कि भक्तों का हृदय शुद्ध कैसे होगा तो इसके लिए महात्मा लोग बहुत सहज उपाय बतलाते हैं।

वैराग्य, शम, दम, क्षमा, शान्ति इत्यादि अन्तरंग साधनों से अन्तःकरण पवित्र होनेसे सन्तो को अपने हृदय में ही परमानन्द रूप से परमात्मा का अनुभव होता है। चित्तवृति आधार के लिए साहब ने राम नाम का उपदेश किया है। सो अपने हृदय में ही नाम का अर्थ चिन्तन करते हुए स्वरूप का स्मरण करना चाहिए। बहिरंग नहीं। (देखिए नाम प्रकरण व 'सहज योग'।)

साखी--एकै शब्द में सब कहा, सबही अर्थ विचार।
भजिये निर्गुण राम को, तजिए विषय विकार ॥१३१॥
आपा तजे हरि भजे, नख शिख तजे विकार।
जीवन ते निरवैरता, साधु मता है सार॥
आपा = घमण्ड अभिमान ॥१९१॥
आप भुलावें आप में, आप न चीन्हें आप।
और होय तो पाइये, यह तो आपे आप ॥परि० ५१॥

इस प्रकार जीव अपने अज्ञान से स्वयं को भूल चुका है। गुरु की कृपा से श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा स्वयं परमानन्द स्वरूप का अपने हृदय में अनुभव कर सकता है। इसके लिए उपर्युक्त विचार के अनुसार अन्तरंग साधन ही चाहिए। बहिरंग साधन तो दूकानदारी का ही उपाय है उसे कहने की आवश्यकता नहीं।

शब्द ९६—दशरथ सुत तिहुँ लोक हि जाना।
राम नाम का मर्म है आना॥
आना = निर्गुण राम।

॥ प्रकरण २८ समाप्त ॥

॥ २९ कर्म की प्रबलता ॥

अवतार वादी कहता है कि भगवान् सर्वसमर्थ है उसे कर्म का लेप नहीं लगता। इस बात पर साहेब कहते हैं।

शब्द १०३—अपने कर्म न मेटो जाई ।
कर्म क लिखल मिटे दहु कैसे, जो युग कोटि सिराई ॥ १ ॥
गुरु वशिष्ट मिलि लगन सोचाए, सूर्यमंत्र लिखि दिन्हा ।
सो सीता रघुनाथ विवाही, पल एक संच न कीन्हा ॥ २ ॥
तीन लोक के कर्त्ता कहिये, बालि बध्यो बरियाई ।
एक समय ऐसी बनी आई, उनहूं औसर पाई ॥ ३ ॥
नारद मुनि के वदन छिपायो, किन्हो कपि के रूपा ।
शिशुपाल के भुजा उपारे, आपु भये हरि ठूँठा ॥ ४ ॥
पार्वती के बाँझ न कहिए, ईश न कहिये भिखारी ।
कहँहि कबीर कर्त्ता की बातें, कर्म की बात है न्यारी ॥ ५ ॥

सिराई = खत्म होने पर । संच न = साथ । वदन = मुख । ठूँठा = लूला । ईश = महादेव । उपारे = उखारे ।

इन सभी शब्दों से सिद्ध होता है कि शुभाशुभ कर्मों का भोग सभी को अवश्य ही होता है । अवतार आदि इससे कोइ बच नहीं सकते ।

साखी—तौ लगि तारा जग मागे, जौ लगि उगे न सूर ।
तब लगि जीव कर्म वशी, जब लगि ज्ञान न पूर ॥२०८॥

॥ प्रकरण २९ समाप्त ॥

॥ ३० कल्पित कर्ता ॥

लोक विशेष में ईश्वर मानने वालों ने उसकी प्राप्ति के

लिए मनुष्यों को विभिन्न कर्म जाल में उलझा रक्खा है इस विषय में साहब कहते हैं—

रमैनी ४—प्रथम चरण गुरु किन्ह विचारा। कर्त्ता गावे सिरजन हारा। कर्म्म ही कै कै जग बौराया। शक्ति भक्ति ले बांधिन माया ॥ १ ॥ अद्भुत रूप जाति की वाणी। उपजी प्रीति रमैनी ठानी ॥२॥ गुणी अनगुणी अर्थ नहि आया। बहुतक जने चिन्ह नही पाया ॥ ३ ॥ जो चिन्हे तेहि निर्मल अंगा। अंचिन्हे नर भये पतंगा ॥ ४ ॥

प्रथम चरण = भ्रम प्रचारकों में सबसे प्रथम। गुरु = भ्रान्ताचार्य। शक्ति-भक्ति = ईश्वर की शक्ति भक्ति में। भाव है कि भ्रान्ताचार्य पंडितो से अनेक प्रकार की रोचक वाणी सुनकर साधारण मनुष्यों को उसमें प्रीति हुई। तथा उन्ही उपदेशों पर चलने लगे ॥३॥ इन लोगों को भले बुरे का विचार समझ में नहीं आया। इस प्रकार बहुत मनुष्य अज्ञ ही रह गए ॥ ४ ॥ कोई कोई विवेकी सद्गुरु की कृपा से इस वंचकता से मुक्त हुए। तथा जो सद्गुरु की शरण में नहीं आये वे गुरुवा की वाणी रूप अग्नि में पतंग बने।

साखी--चिन्ह-चिन्ह क्या गावहू, वाणी पड़ी न चिन्ह।
आदि अंत उत्पति प्रलय, आपुहि कै-कै लीन्ह ॥र० ४ ॥

अर्थ—कबीर साहेब जगाते हुए कहते हैं कि हे भूले

हुए जीवों ! गुरुवों की वाणी को क्या गा रहे हो । यह तो तुम्हारी पहचान में आया ही नहीं । इसे अवश्य पहचानो । इसके न पहचानने से ही सृष्टि की उत्पति व प्रलय तथा जन्म मरण आदिकल्पना से सत्य मान रहे हो किन्तु यह सत्य नहीं, केवल अज्ञान के कारण है ।

रमैनी ६—वरण हूँ कौन रूप औ रेखा । दूसर कौन आहि जो देखा ॥ १ ॥ ओ ॐकार आदि नहि वेदा । ताकर कहहुँ कौन कुल भेदा ॥ २ ॥ नहि तारागण नहि रवि चंदा । नहि कछु होत पिता के बिंदा ॥ ३ ॥ नहि जल नहि थल नहि थिर पवना । को धरु नाम हुकुम को वरणा ॥ ४ ॥ नहि कछु होत दिवस औ राती । ताकर कहहूँ कौन कुल जाती ॥५॥

अर्थ—भिन्न-भिन्न मतवादियों ने कल्पित लोक विशेष में भिन्न-भिन्न ईश्वर मान रक्खे हैं । उनके प्रति साहेब कहते हैं कि हे तटस्थ ईश्वर वादियों ! तुम परमात्मा के किस रूप रेखा का वर्णन करते हो ? दूसरा उसे देखने वाला कौन है । जिस समय वह ॐकार रूप ब्रह्माण्ड नहीं था तथा वेद भी नहीं थे ऐसे मन वाणी से रहित एक अखण्ड चैतन्य व्यापक परमात्मा का परिच्छिन्न रूप से कैसे वर्णन करते हो, कैसे कुल जाति का वर्णन करते हो जिस परमात्मा को चन्द्र, सूर्य, तारे प्रकाशित नहीं करते, किन्तु उसके ही प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं । वह परमात्मा किसी का

कारण और कार्य भी नहीं है। पंच तत्वों के विकार से रहित, निर्विकार, निराकार परमात्मा का कोई कैसे नाम रख सकता है तथा उसके द्वारा कैसे हुक्म दिया जा सकता है। जिससे तुम्हारी कल्पना सिद्ध हो। उस परमात्मा में दिन और रात भी नहीं है तो उसके कुल और जाति का क्या वर्णन करते हो ? सब तुम्हारी कल्पना मात्र है।

॥ प्रकरण ३० समाप्त ॥

॥ ३१ कल्पित लोक ॥

कल्पित लोकों के विषय में साहेब कहते हैं—

साखी—काकी आश लगाइया, झूठी हवा की आश।
गृह तजि वन खण्ड मानिया: झूठे सदा निराश ॥परि० २८

अर्थ—साहब कहते हैं कि कल्पित स्वर्गादि की आशा झूठी है। तुम किसकी आशा लगा रहे हो। तुम्हारी आशा तो ऐसी है कि जैसे कोई घर को छोड़कर वन खण्ड की आशा करे। इसलिए झूठ में विश्वास रखने वाले सदा निराश होते हैं।

साखी--सबे आश करु शून्य नगर की, जहाँ न कर्त्ता कोय
कहँहि कबीर बुझो जिय अपने, जाते भ्रम न होय ॥परि० ३८॥

अर्थ—विवेक हीन, कल्पित लोक की आशा करते हैं जहाँ वास्तविक कोई कर्त्ता नहीं है। साहब कहते हैं कि यह

बात अपने दिल में खूब विचारो जिससे भ्रम न रहे।

साखी—इतते तो सब ही गये, भार लदाय-लदाय।
उतते कोई न आइया, जासो पूछो धाय ॥१६१॥

अर्थ—साहब कहते हैं कि कल्पित आशा में काम्य कर्म का भार लाद लादकर यहाँ से तो सबही गये, किन्तु वहाँ से कोई लौट कर नहीं आया जिससे दौड़कर पूछूँ ॥

प्रकरण १९ समाप्त

॥ ३२ कल्पित नाम ॥

कोइ कोई चिल्ला-चिल्ला कर राम राम पुकारने में मुक्ति मानते हैं उनके प्रति साहेब कहते हैं—

शब्द १०६—पंडित वाद वदे सो झूठा।
राम के कहे जगत गति पावे, खांड़ कहे मुख मीठा ॥१॥
पावक कहे पाँव जो डाहे जल कहे तृषा बुझाई। भोजन कहे भुख जो भागे, तो दुनिया तरि जाई ॥२॥ नर के संग सुआ हरि बोले, हरि-प्रताप न जाने। जो कबहुँ उड़ि जाय जंगल में हरि सुरति नहिं आने ॥ ३ ॥ बिनु देखे बिनु अरस-परस बिनु नाम लिये क्या होई। धन के कहे धनिक जो होवे, निर्धन रहे न कोई ॥ ४ ॥ सांची नेह विषय माया सो, हरि भक्तन की फांसी। कहँहि कबीर एक राम भजे बिनु, बाँधे यमपुर जासी ॥ ५ ॥

बाद बदे = मन गढन्त कल्पित बात कहना। राम भजे बिनु = स्वरूप चिंतन बिना। यमपुर = तामसी योनि।

साखी—रामहि राम पुकारते, जिह्वा परिगौ रौस।
सुधा जल पीवे नहीं, खोदि पियन की हौस ॥र० ३४॥

अर्थ—साहेब कहते हैं कि इन कल्पकों की जीभ में राम-राम पुकारते-पुकारते छाले पड़ गये। किन्तु मूढ़ की तरह पास की बहती हुई नदी के पवित्र जल को छोड़कर कुआँ खोदकर प्यास बुझाना चाहते हैं। भाव यह है कि इनके हृदय में आत्मानन्द ज्ञान स्वरूप जल भरा है उसका चिंतन न कर अनेक वहिरंग साधना करते हुए कल्पित ध्येय की प्राप्ति चाहते हैं।

॥ प्रकरण ३२ समाप्त ॥

॥ ३३ कल्पित भक्ति ॥

रमैनी ५—कहँ लों कहौ युगन की बाता, भूले ब्रह्म न चीन्हें बाटा ॥१॥ हरिहर ब्रह्मा के मन भाई। विवि अक्षर ले युक्ति बनाई ॥२॥ विवि अक्षर का किन्ह बँधाना, अनहद शब्द ज्योति परमाना ॥३॥ अक्षर पढ़ि गुनि राह चलाई। सनक सनन्दन के मन भाई ॥४॥ वेद कितेब किन्ह विस्तारा, फैलि गेल मन अगम अपारा ॥ ५ ॥ चहुँ युग भक्तन बाँधल बाटी, समुझी न परी मोटरी फाटी ॥६॥ भय-भय पृथ्वी दहुँ

दिशि धावे। स्थिर होय न औषध पावे ॥७॥ है बिहिस्त जो चित न डोलावे। खसम छोड़ि दोजख को धावे ॥८॥ पूरब दिशा हंस गति होई। है समीप संधी बुझे कोई॥ भक्ता अक्तिन किन्ह सिंगारा। बूड़ि गैल सब मांझल धारा ॥१०॥

अर्थ—साहब कहते हैं कि अनेक युग की बात में कहाँ तक कहूँ कि त्रिदेव के उपासक ब्रह्मस्वरूप को भूल गये जिससे ज्ञान विचार का मार्ग छोड़ काल्पनिक ईश्वर की प्राप्ति के लिए ही राम कृष्णादि अनेक नामों के मंत्र की कल्पना करते हैं। जिसमें बहुत से त्यागी भाई भी फँसे। चारों युगों में भक्तों ने उपासना का कल्पित प्रपंच खड़ा किया। सत्य विचार समझ में न आने के कारण हृदय अनेक विचारों में बह गया। अनेक मत वादियों की कल्पना से वेद कितेब का जाल फैल गया जिससे लोगों का मन अनेक मार्गों में भटक गया। वञ्चक गुरुओं के धोखे में पड़कर जीव, डर के मारे दशों दिशाओं में दौड़ता फिरता है। शास्त्र पुराणों में उलझ जाता है। न तो उसका चित्त स्थिर होता है और न कोई साधन, युक्ति ही मिलती है। अगर वे भटके जीव चित्त को चंचल न करें तो अवश्य कल्याण प्राप्त करेंगे। किन्तु सब तो स्वरूप चिंतन को छोड़ कुमार्ग में ही दौड़ते हैं। साहेब कहते हैं कि कल्याण तत्त्व तो इनके हृदय कमल में ही है, किन्तु इसका संकेत विरला उत्कृष्ट जिज्ञासु ही समझ पाता है।

साखी—बिनु गुरु ज्ञान द्वन्द्व भई, खसम कही मिली बात।
युग-युग के कहवैया, काहू न मानी बात ॥ र० ५ ॥

सद्गुरु के ज्ञान बिना राग-द्वेषादिक अनेक द्वन्द्वों में जीव फँसता है। अज्ञान वश उस काल्पनिक ईश्वर को ही पति समझता है। सदा से ऐसे ही कहता चला आ रहा है। किसी ने सद्गुरु की बात नहीं मानो। इन गुरुवा लोगों ने भोले भाले मनुष्यों को कैसे भुला रक्खा है। यह कहते हैं—

रमैनी २४—चन्द्र चकोर अस बात जनाई। मानुष बुद्धि दिन्ह पलटाई ॥ १ ॥ चारि अवस्था सपने कहई, झूठो फुरो मानत रहई ॥२॥ मिथ्या बात न जाने कोई। एहि विधि हि सब गैल बिगोई ॥३॥ आगे दै दै सबन गमाया। मानुष बुद्धि न सपनेहुँ पाया ॥४॥ चौंतीस अक्षर से निकले जोई। पाप पुण्य जानेगा सोई ॥५॥

अर्थ—चकोर जैसे चन्द्रमा को टक टकी लगाता है वैसे ही इन वञ्चक गुरुओं ने जड़ पत्थरादि के ऊपर साधकों को मन लगाने को कहा। फल यह हुआ कि इनकी बुद्धि चेतन तत्व से हटकर जड़ पत्थरादि की सेवा से जड़वत ही हो गई ॥१॥ ये गुरुवा लोग हर दशा में असत्य ही कथन करते हैं और लोग इनके झूठे ही वचनों को सत्य मान लेते हैं ॥२॥ इनके मिथ्यापन को कोई नहीं जान पाता। इसी से सबका जीवन बर्बाद होता है ॥३॥ इन गुरुवा लोगों ने स्वर्गादि का लोभ

दे देकर भक्तों का जीवन नष्ट कर दिया, जिससे इनको मनुष्यत्व की प्राप्ति स्वप्न में भी नहीं हुई ॥ ४ ॥ साहब कहते हैं कि जो इन गुरुवा लोगों के वाग्जाल से मुक्त होंगे वे ही सत्य निर्णय को जान सकेंगे।

साखी--सोई कहँते सोई होउगे, निकरि न बाहर आव।
हौं हजूर ठाढ़ कहत हौं, धोखे न जन्म गमाव ॥र० २४॥

रमैनी ६७---देह हलाय भक्ति नहिं होई, स्वांग धरे नर बहुविधि जोई ॥ १ ॥ धींगा धींगी भलो न माना। जो काहू मोहि हृदय न जाना ॥ २ ॥ मुख कुछ और हृदय कुछ आना। सपनेहुं काहु, मोही नहि जाना ॥ ३ ॥ ते दुःख पावे ई संसारा, जो चेते सो होय उबारा ॥ ४ ॥

अर्थ —विवेक विचार के बिना तप से शरीर को क्लेश देना और नाना स्वांग धारण करना नग्न रहना आदि धारणाओं से कोई भलाई नहीं है, हृदय में तो कुछ और है, मुँह से कुछ और कहता है, उस कपटी को स्वप्न में भी आत्म ज्ञान नहीं हो सकता। वह कपटी संसार में अनेक कष्ट पावेगा, अगर चेतगा तो उसका कल्याण होगा।

साखी--लख चौरासी जीव योनि मँह, भटकि भटकि दुःख पाव।
कहँहि कबीर जो रामहि जाने, सो मोहि नीके भाव ॥र०६७॥

अर्थ—चेत न करने वाला पुरुष चौरासी लाख योनि में भटक भटक कर दुःख पाता है, इसलिए जो आत्म तत्त्व को जानता है। वही गुरु का प्यारा है।

शब्द २२—सन्तो देखत जग बौराना। सांच कहो तो मारन धावे, झूठे जग पतियाना ॥ १ ॥ नेमी देखा धर्मी देखा प्रात करे स्नाना। आतम मारि पखानहि पूजे इनमें कछु नहिं ज्ञाना ॥२॥ बहुतक देखा पीर औलिया, पढ़े कितेब कुराना। कै मुरीद तदबीर बतावे, इनमें उहै ज्ञाना ॥ ३ ॥ आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन महँ बहुत गुमाना। पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ गर्व भुलाना ॥ ४ ॥ माला पहिरे टोपी पहिरे छाप तिलक अनुमाना। साखी शब्दे गावत भूले आतम खबरि न जाना ॥ ५ ॥ हिन्दू कहै मोहि राम पियारा, तुर्क कहै रहिमाना। आपस में दुई लड़-लड़ मुये, मर्म काहु नहि जाना ॥६ कहँहि कबीर सुनहु हो संतो, इ सब भर्म भुलाना। केतिक कहो हटा नहिं माने, सहजे सहज समाना ॥ ७ ॥ सहजे सहज समाना—अपनी कुकल्पना में ही लगे रहते हैं।

साखी—ते नर कइहुं कहाँ गये, जिन दीन्हे गुरु घोटि।
राम नाम निज जानिके छांड़हु वस्तुहि खोटि ॥स० ३७॥

घोटि = जड़ी, कान में मंत्र। निज = अपना स्वरूप। खोटी = तुच्छ काल्पनिक।

साखी--गुणातीत के गावते, आपु गये भुलाय।
माटी के तन माटी मिल गये, पवन हि पवन समाय ॥रमैनी ६१॥

माटी ··· कोरी कल्पना में जीवन समाप्त हुआ। भक्त सुमिरण जहँरायऊ हो रमैया राम ॥ बेलि २ ॥

साखी--अपनी-अपनी शीर को सब हि न लीन्हो मान।
हरि की बात दुरन्तरे, परी न काहू जान ॥१७०॥
हरि = आत्मतत्व । शीर = इष्ट । दुरन्तरे = धोखे में ।

साखी--भरम भरा सब लोक में, भरम भरा सब ठाम ।
कहँहि कबीर पुकारि के, बसे भरम के गाम ॥२६४॥

साखी--दर्पण केरी गुफा में, सुनहा पैठा धाय ।
देखि प्रतिमा आपनी, भूकि-भूकि मर जाय ॥६२॥
दर्पण ... शुद्ध हुआ अन्तःकरण । प्रतिमा = भावुक मूर्त्ति । भूकि भूकि = चिंतन ।

साखी--जो दर्पण प्रतिबिंब देखिये, आप दूनो मह सोय ।
या तत्व से वा तत्व है, पुनि यही है सोय ॥६३॥
भाव है कि स्वरूप ज्ञान बिना सब झूठा है ।

साखी—खालि देखिके भरमिया, ढूँढ़त फिरे चहुँ देश ।
ढूँढ़त ढूँढ़त मर गये, मिला न निर्गुण वेष ॥ परि०२७॥
खालि = हृदय में आत्मानन्द न पाकर । निर्गुण = शुद्ध स्वरूप ।

साखी--भक्ति भक्ति सब कोइ कहे, भक्ति न आई काज ।
जहँ के किया भरोसवा, तहँ ते आई गाज ॥परि० २०॥
जहँ = कल्पित लोक । गाज = तुच्छ विषय ।

साखी--यह दुनिया भौ बावरी, अदृष्ट सु बाँधी नेह ।
दृष्टमान को छोड़के, सेवे पुरुष विदेह ॥ परि० ४३ ॥

अदृष्ट = कल्पित ईश्वर । दृष्टमान = आत्म तत्त्व ।

प्रकरण ३३ समाप्त

|| ३४ कल्पित योग ||

रमैनी ६९—ऐसा योग न देखा भाई । भूला फिरे लिये गफलायी || १ || महादेव को पंथ चलावे । ऐसे बड़े महंथ कहावे ||२|| हाट बजारे लावे तारी । कच्चे सिद्धहि माया प्यारी || ३ || कब देवदत्त मवासी तोरी । कब शुकदेव तोपची जोरी || ४ || नारद कब बंदूक चलाया । व्यासदेव कब बंब बजाया || ५ || करहिं लड़ायी मति के मंदा । ई अतीत की तरकस बंदा || ६ || भये विरक्त लोभ मन ठाना । सोना पहिरि लजावे बाना || ७ || घोड़ा-घोड़ी किन्ह बटोरा । गाँव पाय जस चले करोरा || ८ ||

गफलायी = नादानी । तारी = समाधि । मवासी = किला । बंब = बाजा विशेष । अतीत = वैरागी । तरकस बंदा = फौजी जवान । बाना = भेष । करोरा = करोड़ पति ।

भाव—उपर्युक्त महापुरुषों ने कभी ऐसा काम नहीं किया । लोग उन्हें आदर्श मानते हुए भी लड़ायां करते हैं तो ये वैरागी हैं कि फौजी जवान ? विरक्त होकर भी इनके मन में लोभ है और सोना पहनकर वैराग्य वेष को लज्जित करते

हैं, कुछ गाँवों को पाकर घोड़ा घोड़ी इकट्ठा कर करोड़ पति की तरह भ्रमण करते हैं।

शब्द ११२—तुम यहि विधि समझो लोई हो गोरी मुख मांदर बाजै। एक सगुण षट चक्रहि बेधे बिना वृषभ कोल्हू मांजै ॥ १ ॥ ब्रह्महि पकरि अग्नि महँ हून्यो, मच्छ गगन चढ़ि गाजै ॥ २ ॥ नित्य अमावस नित्य ग्रहण है राहू ग्रसन नित दीजै। सुरभी भक्षण करत वेद मुख, घन बरसे तन छीजै ॥ ३ ॥ त्रिकुटी मध्ये मांदर बाजै, अवघट अम्बर छीजै। पुहुमि के पनिया अम्बर भरिया ई अचरज को बूझै ॥ ४ ॥ कहँहि कबीर सुनहु हो संतो योगिन सिद्धि पियारी। सदा रहे सुख संयम अपने वसुधा आदि कुमारी ॥ ५ ॥

अर्थ—इन योगियों के कुछ रहस्य को समझाते हुए साहेब कहते हैं कि हे भाई! तुम इस प्रकार से समझो कि इनके श्वास प्रश्वास के अभ्यास से नाभी बीच कुण्डलिनी नाड़ी के खुल जाने पर वहाँ शब्द होने लगता है। फिर छः चक्रों पर गणेशादि कल्पित देवता का ध्यान करते हैं सो मानो बैल का कोल्हू चलता है। क्योंकि देवता तो मिथ्या ही है, योगाग्नि से दीप्त होकर ज्योति स्वरूप में जब जीव लीन होता है तब माया ब्रह्माण्ड में चढ़कर गजने लगती है। मस्तिष्क में नाना प्रकार के चमत्कार दीखने लगते हैं। चन्द्र, सूर्य नाड़ी के लय होने पर मन भी लय हो जाता है। मस्तिष्क

से जो रस नीचे टपकता है उसे योग का ज्ञाता पुरुष पान करता है तथा उसके सींचन से सम्पूर्ण शरीर सराबोर होता है। त्रिकुटी में जो शब्द होता है, उसमें जीव आसक्त होता है, जो कुघाट में पार होने के समान डूबने का ही निमित्त है नाभिकमल का वायु मस्तिष्क में प्राप्त होता है इस आश्चर्य को कौन समझता है ?

साहेब कहते हैं कि इन योगियों को लौकिक चमत्कार ही प्यारा है, जिसके लिए ये साधन में लग रहते हैं किन्तु सिद्धि किसी के पास रहने वाली नहीं यह तो क्षणिक है।

साखी--वन ते भागा बिहंड़े पड़ा, करहा अपनी बान।
वेदन करहा कासो कहा, को करहा को जान ।।४५।।
जेहि वन सिंह न संचरे, पक्षी न उड़ी जाय।
सो वन कबिरन हींड़िया, शून्य समाधि लगाय ।।२७१।।
बहुत दिवस ते हींड़िया, शून्य समाधि लगाय।
करहा पड़िया गाड़ में, दूर पड़ा पछिताय ।४३ ।।

अर्थ—कोई हाथी अपने झूण्ड से निकल कर बहुत गंभीर पहाड़ की कन्दरा में जा पड़ा, वहाँ जब सिंह गुफा में प्रवेश कर कष्ट देने लगा तो वह हाथी अपनी पीड़ा किससे कहे तथा उसे जानता ही कौन है ? उसे भागने का भी कोई रास्ता नहीं है। इसी प्रकार यह भ्रमित साधक संत समाज को छोड़ कर उस वन की कन्दरा में जाता है, जहाँ कोई पशु पक्षी का नाम निशान नहीं। वहाँ बहुत समय तक शून्य समाधि लगाकर

परमात्मतत्व को ढूँढता है तो हाथियों जैसी दशा होती है। विवेक हीन होने से तत्व का साक्षात्कार नहीं कर पाता और सत्संग भी छूट जाता है।

प्रकरण ३४ समाप्त

॥ ३५ कल्पित ज्ञान ॥

रमैनी ७१—शोक वधावा जिन सम करिमाना। ताकि बात इन्द्रहुँ नहिं जाना ॥ १ ॥ जटा तोरि पहिरावे सेली। योग युक्ति को गर्व दुहेली ॥२॥ आसन उड़ाये कौन बड़ाई। जैसे कौवा चील्ह मँड़राई ॥ ३ ॥ जैसी भीत तैसी है नारी। राज पाट सब गने उजारी ॥ ४ ॥ जस नरकहिं तस चन्दन जाना। जस बाउर तस रहे सयाना ॥ ५ ॥ लपसी लौंग गने एक सारा। खांड़ परिहरि फाँके छारा ॥ ६ ॥

अर्थ—आत्म साक्षात्कार से हीन जो कोई कहता है कि मैं तो हर्ष-शोक को सम देखता हूं, उसके कपट को इन्द्र भी नहीं जानता अर्थात् वह इन्द्र से भी अधिक छली है किसी अन्य मतावलम्बी साधु का जटा कटवाकर अपनी सेली पहनाते हैं अर्थात् अपना शिष्य बनाते हैं। आसन उड़ाने की बात करते हैं, संत दृष्टि से भला इनकी कौन महिमा है जो काग, चील की तरह उड़ते फिरते हैं। कनक कामिनि में

आसक्त होते हुए भी महा विरक्ति की बात करते हैं। कहते हैं कि स्त्री तो दीवार की तरह है, राज पाट उजाड़ जैसा है, चतुर मूर्ख सब एक हैं। इस प्रकार लपसी और लौंग को तुल्य मानने वाले मीठी चीनी को छोड़कर राख फाँकते हैं। नीच कर्मी बनकर नरक गामी होते हैं ॥ ६ ॥

साखी--इहै विचार विचारते, गई बुद्धि बल चेत।
दुई मिलि एक होय रहा, काहि लगाउँ हेत ॥ र० ७१॥

अर्थ—इसी मिथ्या विचार से उनकी बुद्धि तथा आत्म बल नष्ट हो गया। जिनको शुभाशुभ का विचार ही न रहा उनसे किस लिये प्रेम करना, अर्थात् उनका संपर्क नहीं करना चाहिये।

प्रकरण ३५ समाप्त

॥ ३६ अंध परम्परा ॥

साखी--जेहि मारग सनकादिक गये, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सो मारग सब थाकिया, काहि कहो उपदेश ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिस मायिक प्रवाह में विवेक के बिना ब्रह्मादि सनकादि (रागी, विरागी) सभी बह गये, आज भी बहते जा रहे हैं, विचार नहीं करते, तो किसे उपदेश दिया जाय।

साखी--जाने सो पूछे नहीं, पूछि करे नहिं गौन।
अन्धे को अन्धा मिला, पन्थ बतावे कौन ॥२६७॥

अर्थ—मूर्ख मनुष्य ज्ञानवान् सद्गुरु से कल्याण मार्ग पूछता ही नहीं, कदाचित पूछे भी तो उनके उपदेशानुसार चलता नहीं, किन्तु गुरुवा का ही आश्रय लेता है तो भला अन्धे को अन्धा क्या रास्ता बतायेगा, दोनों ही अज्ञान रूप अंध कूप में ही पड़ेंगे।

साखी--देखा देखी सब जग भरमा, मिला न सतगुरु कोय।
कहँहि कबीर करत नित संशय, जियरा डारा खोय ॥परि०२६॥

अर्थ—लोक में देखा देखी परम्परा वश सब संसार भ्रम में पड़ा है, कोई सद्गुरु को प्राप्त नहीं कर सका, ज्ञानहीन होने से संशय में ही अपना जन्म खो दिया।

॥ प्रकरण ३६ समाप्त ॥

॥ ३७ वाचालता ॥

लिखा पढ़ी में पड़े सब, यह गुण तजे न कोय।
सबे पड़े भ्रम जाल में, डारा यह जीव खोय ॥परि०३७॥

अर्थ—ग्रन्थों की देखा देखी करते सब लिखा पढ़ी में ही पड़े हुए हैं। इसे त्याग कर सत्यासत्य का निर्णय नहीं करते, संशय में ही पड़े रहकर अपना जीवन बर्बाद करते हैं।

साखी--एक बात की बात है, बहु विधि कहा बनाय।
भारी पर्दा बीच का, ताते लखा न जाय ॥३२५॥

अर्थ—आत्मा ही सत्य है और देहादि जगत पदार्थ

मिथ्या है, यह एक बात है किन्तु कल्पक पुरुषों ने इसमें नाना वाणी का जाल रच रक्खा है। यही वाणी जाल स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति में बाधक पर्दा है, जिससे ज्ञान नहीं होता।

॥ प्रकरण ३७ समाप्त ॥

॥ ३८ दीर्घ सूत्रता ॥आलस्य॥

साखी--टाला टोली दिन गया, ब्याज बढ़न्ता जाय।
　　ना हरि भजा न खत फटा, काल पहुँचा आय ॥३६४॥
　　ब्याज = तृष्णा रूपी सूद। खत फटा = प्राकृतिक विकार नहीं छूटा।

साखी--पाव पलक के गम नहीं, करे काल का साज।
　　काल अचानक मारिहैं, ज्यों तीतर को वाज ॥३२८॥
　　पाव पलक = पल का चौथा भाग। काल का साज = कल की बात।

साखी--काल करन्ते आज कर, आज करन्ते अब।
　　पल में परलय होयगी, बहुरि करेगा कब ॥३६३॥

॥ प्रकरण ३८ समाप्त ॥

॥ ३९ अनुभव हीनता ॥

केवल पंडिताई से बोध नहीं होता,

रमैनी ३३—अंध सो दर्पण वेद पुराणा। दर्वी कहाँ

महारस जाना ॥ १ ॥ जस खर चन्दन लादे भारा । परिमल वास न जानु गवांरा ॥ २ ॥ कहँहि कबीर खोजे असमाना । सो न मिला जो जाय अभिमाना ॥ ३ ॥

अंध = विवेक हीन पंडित । दर्वी = करछूल, मलीन बुद्धि । महारस = पकवान का स्वाद, आत्मानंद । खर = गदहा । परिमल = चन्दन । असमाना = कल्पित लोकों में । अभिमाना = मिथ्या अहंकार ।

साखी--बिन देखे वा देश की, बात कहे सो कूर ।
आपे खारी खात है, बेचत फिरे कपूर ॥ ३१ ॥

देखे = अनुभव । देश = स्वर्गादि अथवा ब्रह्मज्ञानादि । कूर = झूठा । खारी = नमक, विषय । कपूर = ज्ञान ।

साखी--गावे पढ़े विचारे नहीं, अनजाने का दोहा ।
कहँहि कबीर पारस परसे, पाहन भीतर लोहा ॥२४३॥

अनजाने = बिना समझा हुआ पद । पाहन = पत्थर ।

॥ प्रकरण ३९ समाप्त ॥

॥ ४०. अज्ञानियों की दुर्दशा ॥

नाना प्रकार के दुर्गुणों से युक्त जो गुरु विमुखी है, वह आत्मतत्व से वंचित होकर चौरासी के चक्र में भटकता हुआ दुर्दशा को प्राप्त होता है ।

साखी--गुरु सीढ़ी से उतरे, शब्द वि ूखा होय ।
ताको काल घसीटि है राखि सके ना कोय ॥२९३॥

लोग भरोसे कौन के, बैठि रहे अरगाय ।

जियरहि लूटत यम फिरे, जम मेढ़े लूटे कसाय ॥१६०॥

कौन के = किस कल्पित देवता के । अरगाय = चुपचाप । मेढ़े = भेड़ ।

साखी--झालि परे दिन अछतये, अन्तर परिगै साँझ ।

बहुत रसिक के लागते, वेश्या रहिगै बाँझ ॥५१॥

झालि = अंधेरा । रसिक = लगवार, कल्पित ईश्वरादि । वेश्या = व्यभिचारिणी स्त्री । बाँझ = निपुती, ज्ञान हीन ।

साखी--चलती चक्की हौं दिखा, नयनन आया रोय ।

दोय पाटा के भीतरे, साबित गया न कोय ॥३५॥

अर्थ—दृष्टान्त स्वरूप चलती हुई चक्की को देखकर महात्माओं का हृदय द्रवित होता है । जैसे चक्की के दोनों पट के भीतर आनेवाला दाना बिना पिसाये नहीं रहता, वैसे ही लोक-परलोक, पाप-पुण्य, राग-द्वेष, हर्ष शोकादि द्वन्द्वों में रहने वाले प्राणी पीसे जाते हैं, सदैव पीड़ित होते हैं ।

साखी—हाड़ जरे जस लाकड़ी, केस जरे जस घास ।

कबिरा जरे राम रस, कोठी जरे कपास ॥१६६॥

कबिरा = कल्पित उपासक । राम रस = इष्ट प्रेम ।

साखी--घाट भुलाना बाट बिनु, वेष भूलाना कान ।

जाकी माड़ी जगत में, सो न पड़ा पहिचान ॥१६७॥

बाट = विवेक वैराग्यादि । घाट = अल्पज्ञान । माड़ी = सत्ता । जाकी = जिस परमात्मा की ।

साखी--ई जग तो जहड़े गया, भया योग ना भोग ।
तील झाड़ि कबीर लिया, तिलठी झाड़े लोग ॥३०३॥
तील = स्वरूप ज्ञान । तिलठी = तुच्छ विषय ।
साखी--धीमर जाल पसारि के, आपु गया अरुझाय ।
ताके पाछे मच्छ सब, जाले जाल समाय ॥ परि० ३ ॥
धीमर = गुरुवा । जाल = स्वर्गादिक भावना ।
साखी--वेद कहै सो नहि लखे, समझे और कि और ।
चौरासी के धार में, कबहूँ न पावे ठौर ॥ परि० ५४॥
साखी--सुख का सागर मैं रचा, दुःख दुःख मेला पांव ।
थिर नहीं पकड़ी आपनी, चले रंक औ राव ॥ परि० ३३॥
लोग अहंकार वश अस्थिर होकर दुःख ही में लीन हुए ।
साखी--गृह तजि भये उदासिया, बन खंड तप को जाय ।
चोला थाके माड़िया, बरइन चुनि चुनि खाय ॥५२॥
माड़िया = तृष्णा बढ़ाकर । बरइन = माया ।
साखी--एक न भूला दोय न भूला, भूला सब संसार ।
जानि बूझि के जो नर भूला, ताके वार न पार ॥२१३॥
जासु गोइ भीतर रहे, सो जाने सब गात ।
जानि बूझि अजगूत करे, ताहि कहाँ कुशलात ॥ ३२४ ॥
गोइ भीतर = हृदय में पाप छिपाकर रखता है ।
साखी--मानुष जन्म हि पाय के, चूके अबकी घात ।
जाय पड़े भव चक्र में, सहे घनेरी लात ॥
यह मन तो लोभी भया, खेत बिरानो खाय ।

वाके फल आगे मिले, काल घसीटे जाय ॥परि० ९८॥

खेत..... स्वरूप भिन्न कल्पित पदार्थ का सेवन करता है।

साखी--हंसा के घट भीतरे, बसे सरोवर खोट।

एको ठौर न लागिया, रहा सो ओटे ओट ॥१७॥

अर्थ--जीव के हृदय रूपी तालाव में अज्ञान रूपी जल भरा है इसलिए स्वरूप स्थिति अथवा ज्ञान की कोई भूमिका भी न प्राप्त कर माया के पर्दे में ही रह जाता है।

साखी--गुरु द्रोही औ मन मुखी, नारि पुरुष विविचार।

ते नर चौरासी भरम ही, जौ लगि चन्द्र दिवकार ॥

रमैनी ४३ ॥ दिवकार = सूर्य।

प्रकरण ४० समाप्त

॥ ४१ पुनर्जन्म ॥

साखी--हंसा सरवर तजि चले, देही परिगै सून।

कहँहि कबीर पुकारि के, तेई दर तेई थून ॥ १६ ॥

अर्थ--साहब कहते हैं कि जब यह जीव शरीर को त्याग कर चलता है तब वह मूर्च्छित सा होता है किंतु उसकी पूर्वार्जित वासना के कारण उसे पुनः गर्भ में आना पड़ता है।

रमैनी ८४--उपजि विनशी योनिहि फिर आवे। दुःख संताप कष्ट बहु पावे।

शब्द २७--नव मन सूत अरूझि नहिं सुरझे, जन्म-जन्म अरुझेरा। नव मन= पांच प्राण, चतुष्टय अंतःकरण।

॥ प्रकरण ४१ समाप्त ॥

॥ ४२ ज्ञानी की निर्दोषता ॥

साखी--गुरु बिचारा क्या करे, शिष्यहि माही चूक ।
शब्द बाण बेधे नहीं, बाँस बजाये फूँक ॥१५६॥

अर्थ—बाँस की फुकनी से वायु जैसे निकल जाता है, वैसे ही मूर्खों का हृदय शून्य होने से गुरु का शब्द नहीं ठहरता तो गुरु का क्या दोष है ?

साखी--राह विचारि क्या करे, पंथि न चले सुधार ।
अपना मारग छोड़िके, चले उजाड़ उजाड़ ॥१८८॥

अपना मार्ग = स्वरूप बोधक ज्ञान वैराग्य । उजाड़ = कल्पित मार्ग ।

साखी--ऊपर की दोउ गई, हिये की फूटी आँखि ।
कबीर बेचारा क्या करे, जो जीवहिं नाहिं झाँखि ॥१७५

अर्थ—आँख से दुःख मय कार्य को देखता हुआ भी उसी में प्रवृत रहता है, तथा हृदय में सत्यासत्य का विवेक भी नहीं है तो ऐसे जीव को महात्मा लोग क्या कर सकते हैं, जिसको दर्शन ज्ञान विचार भी नहीं है ।

कबीर जात पुकारिया, चढ़ि चंदन की डार ।
बाट लगाये ना लगे, पुनि का लेत हमार ॥६६॥

चढ़ि = ज्ञान तत्व पर आरूढ़ होकर । बाट = ज्ञान मार्ग ।

साखी--चलते चलते पगु थका, नगर रहा नौ कोस ।
बीचहि में डेरा परा, कहहु कौन को दोष ॥५१॥

पगु = बुद्धि । नगर = स्वरूपदेश । नव कोष = चतुष्टय अंतःकरण, पंच प्राण । बीच = इसी नव के बीच ।

प्रकरण ४२ समाप्त

॥ ४३ विवेक ॥

साखी—हंस बक देखे एक रंग, चरे हरियरे ताल ।
हंस क्षीर ते जानिये बकउ धरेंगे काल ॥ १८ ॥

सत्यासत्य विवेक काल में विवेकी की पहिचान होती है ।

साखी--वस्तु अनत खोजे अनत, कैसे आवे हाथ ।
ज्ञानी सोइ सराहिये, पारख राखे साथ ॥ क्षे॰ ८ ॥

साखी--ज्ञान रतन की कोठरी, चूपक दियो है ताल ।
पारखि आगे खोलिये, कूंजी वचन रसाल ॥२४९॥

चूपक = मौन । ताल = ताला । रसाल = मधुर ।

शब्द विवेक;—

साखी--शब्द स्वरूपी ते भये, जिन किया शब्द सो मेल ।
शब्द न चीन्हे बावरा, फिर-फिर खेल अहेर ॥१५३॥

शब्द स्वरूपी —बोध जन्य तदाकार वृत्ति । शब्द = सार शब्द ।

साखी--लोहहि चूम्बक प्रीत है, लोहहि लेत उठाय ।
ऐसा शब्द कबीर का, पल में लेत छुड़ाय ।
शब्द-शब्द सब कोई कहे, सो तो शब्द विदेह ।
जिह्वा पर आवे नहीं, निरख परख करि लेह ॥

सार शब्द को जिह्वा से उच्चारण नहीं कर सकते। वह विदेह है। वर्ण रहित है। परावाणी है।

साखी—संशय सब जग खंडिया, संशय खंडे न कोय।
संशय खंडे सो जना, जो शब्द विवेकी होय ॥९५॥

साखी—शब्द-शब्द बहु अन्तरे, सार शब्द मथि लीजे।
कहँहि कबीर जहँ सार शब्द नहीं, धृक जीवन सो जीजे ॥
मैं जाना कुल हंस है, ताते कीन्हा संग।
जो जानत बक बावला, छुवे न देती अंग ।।परि० ४८ ॥

कुल हंस = श्रेष्ठ, विवेकी। छुवे न देती अंग = सत्संग में नहीं लेते।

साखी—फहम आगे फहम पीछे, फहम दाये डेरी।
फहम पर जो फहम राखे सो फहम है मेरी ॥१८५॥

फहम······परिच्छिन्न बोध। फहम पर फहम = पूर्ण बोध मेरी = महात्मा का।

साखी—दुहरा तो नूतन भया, पद हि न चीन्हे कोय।
जो यह पद हि विवेकिया, छत्र धनि है सोय ॥६५॥

दुहरा = स्थूल शरीर बार-बार होता रहता है। पद = आत्म स्वरूप। छत्र धनि = सर्वश्रेष्ठ।

साखी—एक फेर का फेर है, फेरहि लखे जो कोय।
कहँहि कबीर फेरहि लखे, छत्र धनी है सोय ॥२४५।

एक फेर = अज्ञान रूपी बन्धन चक्र।

साखी —आपु शब्द संधिक लखो, कहे बिना नहिं ठौर ।
तातें सार असार ही. गुरु पारख शिर मौर ॥परि०५३॥

आपु = अपना स्वरूप । संधिक = भेद, संकेत ।

साखी—जागे सो सपना नहीं, सपना सार असार ।
सार शब्द निशिदिन रखे, जाते मिटे विकार ॥परि०५४॥

साखी—मैं रोवौं यह जगत को, मोको रोवे न कोय ।
मोको रोवे सो जना, जो शब्द विवेकी होय ॥१७७॥

मैं = महात्मा । रोवौ = संसार के कल्याण का चिंतन करते हैं । किन्तु संसारी लोग उपदेश पर ध्यान नहीं देते ।

साखी—हिलगी भाल शरीर में, तीर रहा है टूट ।
चुम्बक बिना न नीकसै, कोटि पाहन गौ छूट ॥९०॥

हिलगी = घुस गयी । भाल = लोहे की नोक । तीर = नोक के ऊपर का भाग । चुम्बक = लोहा खींचने वाला । गुरु की भक्ति । पत्थर = असत उपदेश ।

साखी—बोलि हमारी पूरबी, बूझे विरला कोय ।
मेरी बोली सो बूझै, धूर्व पूर्व का होय ॥१९०॥

पूरबी = चैतन्य बोधक । धूर्व पूर्व = आत्म तत्व के जिज्ञासु ।

साखी—अमृत केरी पोटरी, बहु विधि दीन्हीं छोरि ।
आपु सरीखा जो मिले, ताहि पियावौं घोरि ॥१२७॥

अमृत······आत्म तत्व का उपदेश । बहुविधि = यत्न पूर्वक । छोरि = प्रगट कर । घोरि = दृढ़ता पूर्वक ।

साखी—सुनिये सबकी वारता, निर्वेरिये अपनी।
संदूर का सिंधोरा, झपनी के झपनी ॥

सबकी = अन्यवादियों के भी विचार। निर्वेरिये अपनी= स्वयं विवेक करो। संदूर = दृष्टांत स्वरूप सिंदूर का पात्र। झपनी……बुद्धि की रक्षा, आत्मानुभव।

साखी—बाजन दे बाजन्तरी, कलि कुकरी मत छेर।
तुझे बिरानी क्या पड़ी, तू अपनी आप निबेर ॥

बाजन दें = संसार की चहल पहल मचने दो। कलि = तमोगुणी मूढ पुरुष से मत विवाद करो। बिरानी = अन्य व्यक्ति की। अपनी आप = स्वरूप को समझो।

साखी—नष्टा का यह राज है, नफर के वर्तें टेक।
सार शब्द टकसार है, हृदया माँह विवेक ॥२८७॥

नष्टा = माया। नफर = तुच्छ मन। टेक = प्रभुत्व।

साखी—बूझो शब्द कहाँ ते आया, कहाँ शब्द ठहराय।
कहँहि कबीर हम शब्द सनेही, दीन्हा अलख लखाय ॥परि० ३८

शब्द = नाद, सार शब्द, परावाणी। अलख = निजरूप।

साखी—चार चोर चोरी चले, पगु पनही उतार।
चारो दर थूनी हरी, पंडित करो विचार ॥१३८॥

चारो अंतःकरण रूप चोर जीवों की परमानंद रूप संपति नष्ट करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। पनही = जूता विवेक विचार। चारो दर = चारों की जगह, हृदय। थूनी = स्वरूप चिंतन।

साखी— कहाँ उत्पति का पेड़ है, कहाँ प्रलय का ठाम।
तन छूटे कहाँ जरहुगे, कहाँ बसायहु गाम ॥२३०॥

संसार का मूल क्या है। प्रलय का स्थान कहाँ है। शरीर छूटने पर क्या स्थिति होती है। क्या कुछ निश्चय किया है ?

साखी— शब्दे मारा गिर पड़ा, शब्दे छोड़ा रांज।
जिन यह शब्द विवेकिया, तिनका सँवरा काज ॥१॥

साखी— शब्द हमारा आदि का, पल पल करहु याद।
अन्त फलेगी माहली, उपर के सब बाद ॥ ४ ॥

आदि = सनातन। अन्त = हृदय में। माहली = आनन्द रूप फल। उपर = बहिरंग। बाद = व्यर्थ।

साखी— शब्द हमारा आदि का, शब्द ही पैठा जीव।
फूल रहन की टोकरी, घोरे खाया घीव ॥ ५ ॥

शब्द हि = कल्पित शब्द में आसक्ति। फूल रहन = टोकरी में फूल पड़े-पड़े सड़ जाते हैं। घोरे...मटटे में पड़ा पड़ा घी सड़ जाता है, इसी प्रकार कल्पित शब्द में जीव नष्ट होता है।

साखी—शब्द बिना श्रुति आँधरी, कहहू कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर-फिर भटका खाय ॥

श्रुति = कान की वृत्ति। शब्द = सार शब्द।

साखी—शब्द हमारा तूँ शब्द का, सुनि मति जाहु सरक।
जो चाहहु निज तत्व को, शब्द हि लेहु परक्ख ॥६॥

तूँ शब्द का = तू शब्द का अधिकारी है। सरक= भागना। परख = विवेक।

शब्द ८१—झगड़ा एक बड़ो राजा राम। जो निरुवारे सो निर्वाण ॥१॥ ब्रह्म बड़ा कि जहाँ ते आया। वेद बड़ा कि जिन उपजाया ॥२॥ ई मन बड़ा कि जेहि मन माना। राम बड़ा कि राम हि जाना ॥३॥ भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरे उदास। तीर्थ बड़ा कि तीर्थ के दास ॥४॥

राम = चैतन्य जीव। ब्रह्म = सोपाधिक ब्रह्म। वेद = ग्रंथ मात्र। जिन = ज्ञानी पुरुष। मन = चंचल वृत्ति। जेहि= मन को मानने वाला जीव चैतन्य। राम = कल्पित राम, शुद्धात्मा। दास = भक्त।

प्रकरण ४३ समाप्त

॥ वाक् संयम ॥

कुछ लोग कहते हैं कि कबीर साहेब के शब्द बड़े तीक्ष्ण हैं, किन्तु हमारा कहना है कि उन्होंने जगह जगह वाक् संयम का ही उपदेश दिया हैं।

गुरु कुलाल शिष कुम्भ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट ॥ १५१ ॥

अर्थ—ज्ञान के दाता, गुरु कुम्हार रूप है और शिष्य घड़ा रूप है। जैसे कुम्हार घड़े को मजबूत करने के लिये घड़े को ठोकता है किन्तु ठोकते समय भीतर से सदा हाथ का सहारा

देता है। इसी प्रकार गुरु शिष्य को ठीक रास्ते पर लाने के लिये डाँट डपट करते हैं। वैसे ही जगत् सुधारक महात्मा किसी किसी स्थान पर कु वृत्ति हटाने के लिये संसार के कुकृत्यों की आलोचना करते हैं। जिससे उसे अपने अवगुण का बोध हो। इसलिए कभी कभी खरी खोटी भी सुनानी पड़ती है। हर जगह रोगी को मीठी ही दवा गुण नहीं करती, प्रत्युत रोग को ही बढ़ाती है। यह जानकर महान् पुरुष ऐसा उपदेश करते हैं, जैसा कि साहेब कहते हैं—

सन्तो पांड़े निपुण कसाई। बकरा मारि भैंसा पर धावे,
दिल में दर्द न आई। पहिरि जनेउ ब्राह्मण होना, इत्यादि।

यह अवसर विशेष का दूषण रूप भूषण है। उनके अन्तर्भाव को देखते हुए कोई भी विवेकी इसे कटु प्रयोग नहीं कह सकता और न हीं शिक्षक समाज इसे महसूस करता है। कुछ लोग काव्य की सुन्दरता में भी त्रुटि बतलाते हैं—उनसे हमारा निवेदन है कि कविता रूपी सुन्दरी के सौंदर्य की चकाचौंध से चकित, बहिरंग रसिक जन भोले भाले संत पुरुष की तोतली वाणी की कीमत भले ही न आँक सकें किन्तु अंतरंग रसिक तो उनकी अंतरात्मा में प्रवेश कर आत्मानन्द के रस का पान करते ही हैं।

रमैनी ७०—बोलना का सो बोलिये रे भाई। बोलत ही सब तत्व नसाई॥ बोलत बोलत बाढु विकारा। सो बोलिये जो परे विचारा॥ २॥

मिलहि संत वचन दुई कहिये। मिलहि असंत मौन ह्वै रहिये ॥३॥ पंडित सो बोलिये हितकारी। मूरख सो रहिये झखमारी ॥४॥ कहँहि कबीर अर्ध घट डोलै। पुरा ह्वै विचार लै बोलै ॥५॥

तत्व = रहस्य। विकारा = द्वन्द्व, खेद। वचन दुई = सब दुःखों की निवृत्ति, परमानंद की प्राप्ति। झख मारी = मन मारकर, मौन होकर।

साखी—जाके जिह्वा बंध नहीं, हृदया नाहीं सांच।
ताके संग न लागिये, घाले बटिया माँझ ॥८९॥

साखी—वाणी ते पहिचानिये, साहू चोर का घाट।
जो करनी अंदर बसे, निकले मुँह की वाट ॥३२९॥

साखी—सिंहो केरी खोलरी, मेढ़ा ओढ़े जाय।
वाणी ते पहिचानिये, शब्दे देत लखाय ॥२०७॥

साखी—साधु भया तो क्या भया, बोले नहीं विचार।
हते पराई आतमा, जीभ लिये तलवार ॥ परि० ८ ॥

बोलना है बहु भाँति का, नयनन नहिं कछु सूझ।
कहँहि कबीर पुकारिके, घट-घट वाणी बूझ ॥१९४॥

जिह्वा ते वचन देई, बहु बोलना निरवार।
सारथी सो संग करी, गुरु मुख शब्द विचार ॥ ९० ॥

सारथी ...... बुद्धि पूर्वक विचार करो।

साखी--बोली एक अमोल है, जो कोइ बोले जान।
हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आन ॥२८२॥

साखी—एक एक निरुआरिये, सब निरुआरी जाय ।
दोय मुख का बोलना, घना तमाचा खाय ॥८९॥

शब्द सम्हारे बोलिये, शब्द के हाथ न पाँव ।
एक शब्द करे औषधी, एक शब्द करे घाव ॥३०४॥

साखी--मधुर वचन है औषधी, कटुक वचन है तीर ।
श्रवण द्वार ह्वै संचरे, साले सकल शरीर ॥परि० ८॥

साखी--जैसो कहे करे जा तैसी, राग द्वेष निरुआरे ।
ता में घटे बढ़े रतिया नहिं, यहि विधि आप सम्हारे ॥२६३॥

॥ प्रकरण ४४ समाप्त ॥

॥ ४५ ॥ वैराग्य ॥

साखी--जो तूँ चाहे मुझको, छाड़ सकल की आस ।
मुझ ही ऐसा हो रहो, सब सुख तेरे पास ॥३३८॥

मुझको = आत्म पद को । मुझ ही = विरक्तों के ।

साखी--माया के झख जग मरे, कनक कामिनी लागि ।
कहँहि कबीर कस बाचि हो, रुई लपेटी आग ॥१६५॥

साखी--सुन्दरी नहीं शोभई, सनकादिक के साथ ।
कबहूँ क दाग लगावे, कारी हाँड़ी हाथ ॥र० ३९॥

साखी--साँप बिछी का मंत्र है, महुरो झारा जाय ।
बिकट नारि पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय ॥१९४॥

नारि = अविद्या । काढ़ि = स्वरूप बोध नष्ट करती है ।

साखी--कनक कामिनि देखि के, तूँ मत भूल सुरंग ।
मिलन बिछुरन दुहेलरा, जस केचुरी तजे भुवंग ॥१४५॥

सुरंग = सज्जनों । दुहेलरा = दुःखदाई । भुवंग = सांप ।

साखी--जो घर है गा सर्प का, सो घर साधु न होय ।
सकल संपदा ले गया, बिषहर लागा सोय ॥ ४०॥

सर्प = विकार, संपदा = शम दमादि । भाव है कि विषय लंपट को वैराग्य नहीं हो सकता ।

साखी--विष के बिरवे घर किया, रहा सर्प लपटाय ।
ताते जियरहि डर भया, जागत रैनी विहाय ॥१३९॥

साखी--सुगना सेमर सेइया, दुई ढेंढि की आस ।
ढेढ़ि फूटी चनाक दे, सुगना चला निराश ॥१५७॥

साखी--सेमर केरा सुगना, छिहले बैठा जाय ।
चोंच समारे शिर धुने, इ उस ही का भाय ॥१५६॥

इसीलिये साहेब कहते हैं—

साखी--सुगना सेमर वेग तजू, घनी विगुर्चन पाँख ।
ऐसा सेमर सो सेवे, जा के हृदय न आँख ॥१५८॥

घनी……उड़ने वाली सुन्दर पाँख ।

भाव है कि मूढ़ बार बार धोखा खाता है ।

॥ प्रकरण ४५ समाप्त ॥

॥ ४६ शम-दम ॥

तीन लोक टीड़ी भया, उड़ा जो मन के साथ ।
जाने विनु भटकत फिरे, पड़े काल के हाथ ॥९८॥

साखी--बाजीगर का बांदरा, उस जीव मन के साथ ।
नाना नाच नचाय के, राखे अपने हाथ ॥१००॥

साखी--ई मन चंचल ई मन चोर, ई मन शुद्ध ठगहार ।
मन मन करि सुर नर मुनि, मन के लक्ष दुआर ॥१०२॥

साखी--कबहुक मन खल-खल हँसे, कबहुक उठे रोय ।
कबहुक मनुआ पर जरे, कबहुक चला विगोय ॥२१३॥

पर जरे = पीड़ित होता है । विगोय = त्याग करके नष्ट करके ।

साखी--मन स्वारथी आपु रस, विषय लहर फहराय ।
मन के चलाये तन चले, ताते सर्वस जाय ॥२३६॥

आपु रस = मन की तृष्णा ।

साखी--मन गयन्द माने नहीं, चले सूरत के साथ ।
महावत बिचारा क्या करे, जो अंकुश नहीं हाथ ॥१४३॥

गयन्द = हाथी । अंकुश = विवेक ।

साखी--मन मसलन्द गयन्द है, मनसा लही सचान ।
यंत्र मंत्र माने नहीं, लागे उड़ि-उड़ि खान ॥१४२॥

मसलन्द = मतवाला । सचान = बाज पक्षी । यंत्र मंत्र= विचार ।

साखी--नयनक्क आगे मन बसे, पलक्क-पलक करे दौड़ ।
तीन लोक मद भूप है, मन पूजा सब ठौर ॥ ३५॥

भाव है कि जाग्रत अवस्था में मन विशेषकर नेत्र में ही रहता है और हर क्षण विषय में दौड़ लगाता रहता है । इसलिये यह त्रैलोक्य का राजा और पूज्य बना हुआ है ।

साखी--धरती फाटे मेघ जल, कपड़ा फाटे डोर ।
तन फाटे की औषधी, मन फाटे नहि ठौर ॥ ३१०॥

साखी--मन माया के चोट ते, मारे सकल जहान ।
सुर नर मुनि घायल भये, ऐसे जोर कमान ॥ ३२४॥

कमान = बाण के समान ।

साखी--मन माया की कोठरी, तन संशय का कोट ।
विषहर मंत्र न माने, काल सर्प का चोट ॥ ६०॥

विषहर मंत्र = विष को दूर करने वाला गारुड़ मंत्र । (अज्ञान को दूर करने वाला सदुपदेश) काल = अज्ञान ।

साखी--तन बोहित मन काग है, लख योजन उड़ि जाय ।
कबहुँक भ्रमे अगम दरिया, कबहुंक गगन समाय ॥ २४८॥

अगम = विषय समुद्र । गगन = हृदयाकाश ।

साखी--नाना रंग तरंग है, मन मकरंद असूझ ।
कहँहि कबीर पुकारि के, अकल कला ले बूझ ॥ ९९॥

रंग तरंग = विषय पदार्थ । मकरंद = विषय रस में । असूझ = विवेक हीन । अकल कला = बुद्धि की कुशलता ।

साखी--तीन लोक चोरी भई, सर्वस सबका लीन्ह ।
बिना मूड़ का चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥ ३४॥
सर्वस = आत्म धन । बिना रूप रेखा का मन रूप चोर ।

साखी--मन सायर मनसा लहर, बूड़े बहुत अचेत ।
कहँहि कबीर ते बाँचिहैं, जाके हृदय विवेक ॥११३॥
सायर = समुद्र । मनसा = वासना ।

साखी--मूल गहन का काम है, तैं मति भरम भुलासि ।
मन सायर मनसा लहर, बही कतहुँ मति जासि ।९७॥

साखी--चित दर्पण मन मसकला, कलमा कलुफ लगाय ।
ये अजीज माँजत रहु, मूरचा लागि न जाय ॥१५०॥
मसकला = मसाला । कलमा = स्वरूप चिंतन । कलुफ= ताला, विवेक ।

साखी--मन की दौड़ अनेक है, तीन लोक पगु एक ।
बलिहारी तेहि संत की, मन को राखो टेक ॥२५३॥
मन गया तो जाने दे, गहि के राखि शरीर ।
उतरा रोद कमान का, क्यों कर लागो तीर ॥२३७॥
रोद = धनुष की डोरी ।

साखी--तन राता मन जात है, मन राता तन जाय ।
तन मन एके ह्वै रहे, तब हंस कबीर कहाय ॥२०५१॥

शब्द २०—सन्तो घर में झगड़ा भारी । रात दिवस मिली उठि उठि लागे, पाँच ढोटा एक नारी ॥ १ ॥ न्यारो

न्यारो भोजन चाहे, पाँचो अधिक सवादी । कोइ काहू का हटा न माने, आपुहि आप मुरादी ॥ २ ॥ दुर्मति केर दोहागिन मेटे ढोटहि चाप चपेरो । कहँहि कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरे ॥३॥ ढोटा = इन्द्रियाँ । नारी = मन । मुरादि = इच्छुक । दोहागिन = राग द्वेष । चाप चपेरे = दबावे ।

॥ प्रकरण ४६ समाप्त ॥

॥ ४७ श्रद्धा ॥

साखी--सतगुरु वचन सुनो हो संतो, मति लीजे शिरभार ।
हौं हजूर ठाढ़ कहत हौं, तैं सम्हार-सम्हार ॥२५७॥

शिर भार = हृदय पर अज्ञान का बोझ। हौं हजूर = प्रत्यक्ष रूप से बोध कराता हूं ।

साखी- श्रोता तो घर में नहीं, वक्ता वदे सो वादि ।
श्रोता वक्ता एक ह्वै कथा सुनावो आदि॥२०५॥

आदि = आत्म तत्व बोध मूलक ।

प्रकरण ४८ समाप्त

॥ ४८ मुमुक्षुता ॥

स्व स्वरूपानुभूति रूप मुक्ति, वासनाओं का त्याग करने से ही मिलती है ।

साखी--जो तू चाहे मुझको, छाड़ सकल की आस ।
मुझ ही ऐसा हो रहो, सब कुछ तेरे पास॥३३८॥

मुझको = आत्म तत्व को। सकल = सभी अनात्म प्रपंच।

शब्द हमारा तु शब्द का, सुनि मत जाहु सरक॥
जो चाहो निज तत्व को, शब्दहि लेहु परक्ख ॥ ६ ॥

सद्गुरु के उपदेश को धारण करो, दूर मत जाओ। इस प्रकार आत्मार्थी को मुमुक्षुता के मूलतत्व का बोध साहब ने कराया।

प्रकरण ४८ समाप्त

॥ ४९ जिज्ञासु को चेतावनी ॥

जिज्ञासु को सचेत करते हुए शब्द ८३ में साहब कहते हैं-

हंसा हो चित चेत सवेरा। इन प्रपंच कैल बहु तेरा ॥१॥
पाखण्ड रूप रचो इन त्रिगुण, तेहि पाखण्ड भूला संसारा ॥२
घर के खसम बधिक वै राजा, परजा का दहुँ करे विचारा ॥३॥
भक्ति न जाने भक्त कहावे, तजि अमृत विष कैलन सारा ॥४॥
आगे पड़े ऐसे ही बूड़े, तिनहुँ न मानल कहा हमारा ॥५॥
कहल हमार गाँठ बाँधिहो, निशिवासर रहि हो हुशियारा ॥६॥
ये कलि गुरुवा बड़े प्रपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा ॥७॥
वेद कितेब दोउ फंद पसारा, तेहि फंदे पर आपु विचारा ॥८॥
कहहि कबीर तेहि हंस न बिसरो, जामें मिले छुड़ावन हारा ॥

घर के खसम .....त्रिदेवों के उपासकों ने संसार का मुखिया बन कर जीवों को प्रपंच में डाला। अमृत = आत्म तत्व। विष = विषय पदार्थ। तेहि......संसार से छुड़ाने वाले महापुरुष को मत भूलो।

शब्द ३२—अपन पौ आपुहि विसर्यो। जैसे सुनहा काँच मंदिर में भ्रमते भूकि मर्यो ॥१॥ ज्यों केहरि वपु निरखि कूप जल, प्रतिमा देखि पर्यो। वैसे हीं गज फटिक शिला में, दशनन आनि अर्यो ॥२॥ मर्कट मूठि स्वाद नहि विहुरे, घर घर रटत फिर्यो। कहँहि कबीर नलिनी के सुगना, तुहि कवने पकर्यो ॥ ३ ॥

पौ = दाव। सुनहा = कुत्ता। कांच = शीशा। भ्रमते= दूसरा कुत्ता समझकर। केहरि = सिंह। वपु = देह। निरखि= देखकर। प्रतिमा = परछाहीं। गज = हाथी। फटिक शिला = संगमरमर पत्थर। दशनन = दांत तोड़ लेता है। मर्कट = बन्दर। विहुरे = छोड़ता है। नलनी = सुग्गा पकड़ने की नली। तुहि = तुम्हें किसने पकड़ा है? अर्थात् तुझे किसी ने पकड़ा नहीं है। तुम ही खुद अज्ञान से पकड़ा हुआ मान रहे हो। उपर्युक्त दृष्टांत से स्पष्ट है कि जीव अज्ञान वश संसारिक प्रपंच में फँसा है।

शब्द ११३—झूठे जनि पतियाहू हो, सुनु संत सुजाना। घट ही में ठगपूर है, मति खोहू अपाना ॥ १ ॥ दशो दिशा वाके फंद है, जिव घेरे आनां। झूठे का मण्डान है, धरती असमाना ॥ २ ॥ योग जप तप संयमा, तीर्थ व्रत दाना। नौधा वेद कितेब है, झूठे का बाना ॥३॥ काहू के शब्दे फुरे, काहू करमाती। मान बड़ाई ले रहे, हिंदू तुरुक दू जाती ॥४॥

बात ज्योत असमान की, मुद्दत नियरानी। बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिन पानी ॥ ५ ॥ कहँहि कबीर कासो कहो, सकलो जग अंधा। साँचे से भागा फिरे, झूठे का बंदा ॥६॥

नौधा = श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास भाव, सखा भाव, आत्म निवेदन। यह नव प्रकार की भक्ति।

शब्द = वाक सिद्धि। करमाती = मंत्रादि व्यवहार। असमान = स्वर्गादि। मुद्दत = समय। खुदी = अभिमान।

साखी--शब्द कहे सो कीजिये, गुरुवा बड़े लबार।
अपने-अपने लोभ के, ठाम-ठाम बटमार ॥३६१॥

बटमार = रास्ते पर लूटने वाला।

साखी-रतन का यतन करू, माटी का सिंगार।
आया कबिरा फिर गया, फीका है संसार ॥१२२॥

आया......मनुष्य शरीर पाकर आत्म बोध न होने के कारण फिर तुच्छ संसार ही में चक्कर काटता है।

प्रकरण ४९ समाप्त

॥ ५० गुरु-गुरुवा ॥

साखी--ताकी पूरी क्यों परे, गुरू न लखाई बाट।
ताकी बेड़ा बूड़ ही, फिर फिर औघट घाट ॥२००॥

साखी--गुरु गुरुवन में भेद है, नीके लीजे जान।
एक छोड़ावे बन्धना, एक बन्धन में सान ॥३५२॥

साखी—जाका गुरु है आन्धरा, चेला काह कराय।
अंधे अंधा ठेलिया, दोनों कूप पराय ॥२०१॥

साखी—हीरा सोई सराहिये, सहे घनन के चोट।
कपट कुरंगी मानवा, परखत निकसा खोट ॥१६१॥

हीरा = पूर्वज्ञान। घन = कसौटी।

साखी—ताहि न कहिये पारखी, पाहन लखे जो कोय।
ई दिल नग जु कोई लखे, रतन पारखी सोय ॥३००।
ज्ञानी सोइ सराहिये, कच्चा फल नहिं खाय।
किंचित फल पक्का मिले, युग-युग क्षुधा बुताय ॥२७६

पक्का = स्वरूप बोधक। युग-युग = सदा के लिए।

साखी—बिगड़ा जन्म अनेक का, सुधरा अवही आय।
जब गुरु आप कृपा करी, शब्द दियो परखाय ॥परि० ५८॥

साखी—एक शब्द गुरु देव का, ताका अनन्त विचार।
थाके मुनिवर पंडिता, वेद न पावे पार ॥१३१॥

एक शब्द = आगे साखी में कहा गया निर्गुण राम (तत्वमसि)।

साखी—एक शब्द में सब कहा, सब ही अर्थ विचार।
भजिये निर्गुण राम को, तजिये विषय विकार ॥३६॥
तिमिर जाय रवि देखते, कुबुद्धि जाय गुरु ज्ञान।
सुमति जाय एक लोभ ते जा, मैं भूला जहान ॥५६॥

तिमिर = अंधकार। रवि = सूर्य।

साखी—मसि कागज छुवो नहीं, कमल गहो नहि हाथ ।
चारो युग के महातम, मुख हि जनाई बात ॥१७९॥

अर्थ—कबीर साहेब कहते हैं कि (लिखा पढ़ी में पड़े सब) जिज्ञासु को स्वरूप बोध कराने के लिये मैंने स्याही कागज तथा कलम की सहायता नहीं ली, किन्तु महापुरुषों की विचार धारा जो प्रारंभ से चली आ रही है उसका ही अनुभव युक्त कथन किया।

साखी—जेते पत्र वनस्पती, औ गंगा की रैन ।
पंडित बेचारा क्या कहे । कबीर कही मुख बैन ॥२५६

अर्थ—बनस्पति के पत्त े तथा बालू के अनगिनत कणों के समान जो बात मैंने कही उसके सम्बन्ध में लिखा पढ़ी वाले बिचारे पंडित क्या कह सकते हैं। उनका उपदेश आत्मा के संबंध में यथार्थ नहीं हो सकता। उसे तो कोई अनुभवी पुरुष ही अपनी आत्म शक्ति से शुद्ध जिज्ञासु के हृदय में बोध करा सकते हैं।

साखी—देखी तो सब कहत है, अनदेखि नहि कोय ।
अनदेखि तो सो कहे, जो भीतर पैठा होय ॥३७१॥

देखी......मन इन्द्रियों के विषय । अनदेखी = इन्द्रियातीत । भीतर = अनुभवी ।

साखी—हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारी हाट ।
जब आये जन पारखी, तब हीरों की साट ॥१६२॥

सांट = कीमत ।

साखी—जहाँ बोल तहाँ अक्षर आया, जहाँ अक्षर तहाँ मन हि दृढाया । बोल अबोल एक है सोई, जिन यह लखा सो विरला होई ॥२०६॥

जहाँ=वाणी मात्र शब्द है । बोल अबोल = कार्य कारण ।

साखी--गुरु सिकलीगर करि लेहू, मनहि मसकला देय ।
शब्द छोलना छोल के, चित दर्पण करि लेय॥,४९॥

सिकलीगर = अज्ञान मल को दूर करने वाला गुरु । मनहि = मनन । मसकला = मसाला । छोलना = माँजनी शुद्ध करने वाला ।

साखी--मच्छ बिकाने सब गये, धीमर के दरबार ।
अखियाँ तेरी रतनारी, तू क्यों पेन्ही जाल ॥२२७॥

मच्छ = अन्ध भक्त । धीमर = गुरुवा । अखियाँ = बुद्धि रतनारी = अन्य जीवों से विशेष । जाल = काल्पनिक उपदेशों का ग्रहण ।

साखी--पानी भीतर घर किया, सैय्या किया पताल ।
पासा पड़ा करीम का, मैं तब पेन्ही जाल ॥२२८॥

पानी = पिता का बूंद । सैय्या = निवास । पताल = माता का गर्भाशय । पासा = संस्कार रुप रस्सी । जाल = गुरुवा का फंद ।

साखी—मच्छ भये न बाचिहौं, धीमर तेरा काल।
जेहि जेहि डाबर तूँ फिरो, तहँ तहँ मेले जाल ॥ क्षे० २२१-६ ॥

मच्छ = अज्ञानी। धीमर = गुरुवा। डाबर = शरीर।
जाल = कल्पित वाणी।

साखी--कबीर वैद्य बोलाइया, पकड़ि देखाइ बाँह।
वेदन वैद्य न जानइ, कफ्फ कलेजे माँहि ॥२६५॥

भाव गुरुवा स्वयं अज्ञान में रहता है।

वसन्त ११—जो तोहि सतगुरु सत्य लखाव।
ताते छूटे न चरण भाव ॥ अमर लोक फल लावै चाय,
कहहिं कबीर बूझै सो खाय ॥

अर्थ—जो तुम्हें सतगुरु सत्य का बोध करा देंगे और उनके चरण भक्ति का त्याग नहीं करोगे तथा उनके ज्ञान में अति श्रद्धा होगी एवं उनका विचार समझोगे तो स्वरूप का लाभ कर सकोगे।

सतगुरु के सेवन के विना हानि—

साखी—जाको सतगुरु नहिं मिला, व्याकुल दहु दिशि धाय।
आँख न सूझै बावरा, घर जरे घूर बुताय ॥क्षे०२४२-७

अर्थ—जिसे सद्गुरु की प्राप्ति नहीं हुई वह व्याकुल हो दशो दिशाओं में भागा फिरता है उस अन्धे को सूझता तो है नहिं जिस कारण वह राग द्वेष में ही जलता रहता है, और इन्द्रिय सुख हेतु तत्पर रहता है।

प्रकरण ५० समाप्त

॥ ५१ सत्संग ॥

साखी—संगत कीजै साधु की, हरे और की व्याधि।
ओछी संगत क्रूर की, आठो पहर उपाधि ॥२१०॥

हरे......अनादि अज्ञान दूर करती है।

साखी—संगत से सुख उपजे, कुसंगत से दुःख होय।
कहँहि कबीर तहँ जाइये, अपनी संगत होय ॥२११॥

अपनी संगत = स्वरूप बोधक सत्संग।

साखी—पारख रूपी जीव है, लोह रूप संसार।
पारस ते पारस भया, परस भया टकसार ॥६०॥

पारस = चैतन्य। परस = सत्संग। सत्संग से अज्ञानी जीव भी ज्ञानी होता है। चैतन्य की सत्ता से संसार प्रकाशित होता है। टकसार = स्वरूप स्थिति में लाने वाले साधन।

साखी—पारस-परसि तामा भौ कंचन, बहुरि न तामा होय।
परिमल वास परासहि बेधे, काष्ठ कहे नहिं कोय ॥३९८॥

कंचन = सोना। परिमल = सुगन्धि। परास = एक वृक्ष

साखी—मलया गिरि के वास में, वृक्ष रहा सब गोय।
कहबे को चन्दन भया, मलया गिर न होय ॥४८॥

भाव है कि पारस या मलया गिर चंदन, लोहा या पेड़ को अपने तूल्य नहीं कर सकता किन्तु ज्ञानी के सत्संग से जिज्ञासु भी ज्ञानी हो जाता है।

साखी—नित खरसान लोह धुन छूटे ।
नित की गुष्टि माया मोह टूटे ॥ २३१ ॥
गुष्टि = सत्संग विचार आदि ॥

प्रकरण ५१ समाप्त

॥ संत लक्षण ॥

साखी—सबही ते लघुता भली, लघुता ते सब होय ।
ज्यों दुतिया का चन्द्रमा, शिर नावे सब कोय ॥१९५॥
भावार्थ—सन्त को बहुत नम्र होना चाहिए ।
साखी—आपा तजे और हरि भजे, नख सिख तजे विकार ।
जीवन ते निर वैरता, साधु मता है सार ॥१९६॥
साधु को निरभिमानी और निर्वैर होना चाहिये ।
साखी—पक्षा पक्षी कारणे, जग तो जात भुलान ।
निर्पक्षी होय हरि भजे, सोई संत सुजान ॥१९७॥
भाव—सन्त को बिल्कुल निष्पक्ष होना चाहिये ।
साखी—सोना सज्जन साधु जन, टूटि जूड़े सौ बार ।
दूर्जन कुम्भ कुम्हार का, एकै चोट दरार ॥२२३॥
भाव है कि साधु को दृढ़ संकल्पयुक्त होना चाहिये । अर्थात् लाखो विघ्न पड़ने पर भी साधन से नहीं हटना चाहिये तथा गिरने पर भी पुनः उठना चाहिये ।
साखी—कागर ही की कोठरी, कागर ही का कोट ।
तोंदी कारी ना भई, रहा स ओटे ओट ॥२२५॥

तोंदी = तर्जनी का अग्र भाग ।

साखी—काजर की है कोठरी, बूड़त ई संसार ।
बलिहारी तेहि सन्त को पैठि के निकसन हार ॥२२४।

भाव है कि साधु बिल्कुल अनासक्त होता है ।

साखी – त्यागी त्यागी सब कहे, और त्याग सब थोर ।
त्यागी तबही जानिये, त्यागे घट का चोर ॥२५६॥

घट का चोर = काम क्रोधादि विकार ।

भाव – साधु को ज्ञान वैराग्य से परिपूर्ण होना चाहिये ।

साखी – जानि बूझि जड़ ह्वै रहे, बलि तजि निर्बल होय ।
कहँहि कबीर ता संत को, पला न पकड़े कोय ॥१४९॥

भाव – साधु को अपनी बुद्धिमत्ता प्रगट नहीं करनी चाहिये । ऐसे सन्त को कोई प्रपंच में नहीं खींच सकता ।

साखी – हीरो की बोरी नहि, मलयागिरि नहिं पांत ।
सिंहों के लेहड़े नहीं, साधु न चले जमात ॥परि० १०॥

भाव – साधु (जमात करामात से दूर रहने वाले) कोइ विरले होते हैं ।

साखी – साधु भया तो क्या भया, बोले नही विचार ।
हते पराइ आतमा जीभ लिये तलवार ॥ परि० ८ ॥

भाव—साधु को वाक् संयमी होना चाहिये ॥

शब्द ६७—हरिजन हंस दशा लिये डाले । निर्मल नाम चुनि चुनि बोले । मुक्ता हल लिये चोंच लभावै । मौन रहे

कि हरि यश गावे ॥ मान सरोवर तट के वासी, राम चरण चित अन्त उदासी ॥ कागा कुबुद्धि निकट नहि आवे । प्रतिदिन हंसा दर्शन पावे ॥ क्षीर नीर का करै निवेरा । कहहिं कबीर सोई जन मेरा ॥४॥

मुक्ताहल = ज्ञान प्राप्ति । चोंच = मन की वृत्ति । लभावे = लगाते हैं । कागा = विषयी ।

॥ प्रकरण ५२ समाप्त ॥

॥ ५३ सप्त भूमिका ॥

रमैनी ३८—एक सयान सयान न होई । दूसर सयान न जाने कोई ॥१॥ तीसर सयान सयानहि खाई । चौथ सयान तहाँ ले जाई ॥२॥ पचवें सयान न जाने कोई । छठे माँह सब गैल बिगोई ॥३॥ सतवें सयान जो जानहु भाई । लोक वेद मँह देउ देखाई ॥४॥

१ शुभेच्छा । २ सुविचारना । ३ तनुमानसा योगी । ४ सत्वापत्ति । ५ असंसक्ति । ६ पदार्थाभाविनि । ७ तुरिया ।

प्रकरण ५३ समाप्त

॥ ५४ सहजयोग व हठ योग ॥

ककहरा ६—सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु गुरु के वचन समाई हो । मेली शिश्त चरा चित राखहु रहहु दृष्टि लौ

लाई हो । जस दुख देखि रहहु एहि अवसर अस सुख होइहैं पाई हो ॥१॥

अर्थ – साहेब कहते हैं कि हे साधकों । गुरु के उपदेश में बुद्धि को स्थिर करके स्वाभाविक ही मन को हृदय में समाहित करो । चंचल चित को कल्याण स्वरूप आत्मा में लगाओ । साधन के कष्ट से मत घबराओ । स्वरूप लाभ होने पर महान सुख होगा ॥१॥

"जो खुटकार वेगि नहि लागे, हृदय निवारहु कोहू हो ।
मुक्ति कि डोरि गाढ़ि जनि खैंचहु तब बझिहै बड़ रोहु हो ॥

अर्थ – सभी विघ्नों को सहते हुए क्रोध और शीघ्रता का त्याग करो । तब मन का दमन होगा ।

"मनुअहिं कहो रहो मन मारे, खिझुआ खिझि न बोले हो ।
मानू मीत मीतैयो न छोड़े, कमउ गाँठि न खोले हो ॥३॥"

अर्थ – इस चंचल मन को हमेशा मारते रहो, कभी क्रोध कर किसी के प्रति कुवचन का प्रयोग मत करो अर्थात वाक् संयम करो । जो उपकारी संतगण है उनकी संगति कभी न छोड़ो तथा कामना वृत्ति को कभी मत फैलाओ ॥

"भोगहू भोग भूक्ति जनि भूलहु, योग युक्ति तन साधहू हो ।
जा मत से करहू मतवाली, ता मत के चित बाँधहू हो ॥"

अर्थ – शरीर के जो प्राकृतिक भोग हैं उन्हें भोगते हुए भी उनमें आसक्ति मत हो । तथा योग युक्ति से शरीर को साधो । जिस राजसी तामसी वृत्ति से मन चंचल होता है उस

वृत्ति को युक्ति से बाँधो तब तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध हो सकेंगे।

शब्द ८—सन्तो कहो तो को पतिआई। झूठ कहत सांच बनि आई॥ ॥ लौके रतन अवेध अमौलिक, नहि गाहक नहि साई। चिमिक चिमिक चिमके हग दहुँ दिशी, अर्व रहा छिरि-याई॥२॥ आपे गुरु कृपा कछु कीन्हा, निर्गुण अलख लखाई। सहज समाधि उन्मुनि जागे, सहज मिलें रघुराई॥३॥ जहँ जहँ देखो तहँ तहँ सोई, मानिक बेध्यो हीरा। परम तत्व गुरु ही ते पाये, कहे उपदेश कबीरा॥४॥

अर्थ—परमात्म तत्व का वर्णन करते हुए सहज समाधि के द्वारा साहेब स्वरूप-प्राप्ति-वर्णन करते हैं। जहाँ ध्येय का स्वरूप काल्पनिक ही होता है। तथापि अभ्यास द्वारा बुद्धि की निर्मलता से ज्ञेय स्वरूप को प्राप्त कर लेता है इसलिए साहेब कहते हैं कि झूठ कहते हुए भी अर्थात ध्यान झूठ होते हुए भी सत्यात्मा का ज्ञान बन सकता है। यदि साधक विवेक सम्पन्न हो, फिर की लोग विश्वास नही करते बहिरंग ध्यान जन्य वस्तु को ही सत्य मानते हैं। फिर गम्भीर आत्म तत्व को यथावत कहने पर भी साधारण व्यक्ति, चित्त की अस्थि-रता से उसे असत्य ही मानता है और कल्पित असत्य पदार्थ को ही सत्य मान लेता है। विवेक पूर्वक विचार करने पर ज्यों का त्यों सत्य प्रकाशित होता है॥१॥ वह तत्व कैसा है?

अखण्ड चैतन्यस्वरूप मायिकता से परे सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है। किंतु इसका न तो उपदेश दाता सद्गुरु ही जल्दी मिलता है और न उसके योग्य जिज्ञासु ही मिलता है। सदा सर्वत्र भासमान होने से शुद्ध बुद्धि वाले के हृदय में उसका आनन्द कण प्रकाशित होता है।

सद्गुरु की कृपा मात्र से इस निर्गुण अलख आत्म स्वरूप का प्रकाश हुआ। उस आनन्द स्वरूप में स्थिर होने पर सहज ही समाधि सिद्ध हुई। उस समाधि रूप उन्मुनि के जागने पर (हस्तामलकवत्) हाथ में आवले के समान बुद्धि में स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष बोध हुआ।

अब तो समाधि की दशा में बुद्धि जहाँ जहाँ जाती है वहाँ वहाँ वही आनन्दमय समष्टिव्यष्टि के ऐक्य रूप आत्म तत्व का ही अनुभव करता है। यह परमात्म तत्व सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त हुआ। इस प्रकार का उपदेश कबीर साहेब ने किया। रघुराई = आत्म तत्व।

शब्द ३८—कबिरा तेरो वन कंदला में, मानु अहेरा खेले। बपुबारी आनन्द मीरगा, रुचि रुचि शर मेले ॥१॥ चेतत रावल पावन खेड़ा, सहजे मूल बाँधे। ध्यान धनुष औ ज्ञान बाण करि, योगेश्वर शर साधे ॥२॥ षट चक्रहि बेधि कमल वेध्यो, जाय उजियारी कीन्हा। काम क्रोध लोभ मोह हाँकि सावज दीन्हा ॥३॥ गगन मध्ये रोकिन द्वारा, जहाँ दिवस

नहिं राती । दास कबीरा जाय पहूंचे, बिछुरे संग संघाती ॥४॥

अर्थ—कबीर साहेब कहते हैं कि हे भूले हुए जीवों ! तेरे शरीर रूपी बगीचे में काम-क्रोध-लोभ से युक्त मन अहेर खेलता है अर्थात तेरा आत्म ज्ञान रूपी फल बर्बाद करता है, अतएव तुम उससे युक्ति पूर्वक रक्षा करो। किस प्रकार रक्षा करे सो बतलाते हैं—शरीर रूपी बगीचे के जो आत्मानन्द रूपी फल हैं उसके चरणे वाले जो काम क्रोधादि मृग हैं उन पर बारम्बार सम्हार-सम्हार कर ज्ञान रूपी बाण छोड़ो ॥१॥ दुर्लभ मानव तन रूपी ग्राम के राजा जीवों ! सावधानी पूर्वक सहज मूल बाँधो, अर्थात स्थिरता पूर्वक सहजासन लगाओ। फिर योग-भक्त गुरु की बतायी युक्ति से ध्यान रूपी धनुष पर ज्ञान रूपी बाण चढ़ाकर उन मृगों पर छोड़ो ॥ २ ॥ षट चक्र रूप कमल बेधकर अर्थात् सन्त मत के अनुसार आज्ञा चक्र से ऊपर जो छः भूमिकाएँ हैं उसे पारकर ब्रह्मरन्ध्र में प्रकाश करो और काम क्रोधादि सभी शिकारों को खदेड़ दो ॥३॥ फिर दसवे द्वार में मन को स्थिर करो जहाँ सदैव प्रकाश होने से दिन रात का कोई भेद नहीं है। साहेब कहते हैं कि इन साधनों से साधक मन इन्द्रियादि प्रपंचों से रहित होकर सत स्वरूप में स्थिर होता है ॥४॥ षट चक्र और मूल बंध के लेख से हठ योग प्रतीत होता है सो नहीं, सहज शब्द तथा सन्त मत की छः भूमिकाओं से सहजयोग ही है।

१ सहस दल । २ वंक नाल । ३ त्रिकुटी । ४ शून्य । ५ महा शून्य । ६ भवँर गुफा, इसके ऊपर सतलोक ।

॥ प्रकरण ५४ समाप्त ॥

॥ ५५ अहिंसा ॥

दुनिया में शान्ति लाने के लिये कबीर साहेब ने आत्म-ज्ञान का शस्त्र अपनाया जिसके साधन सत्य और अहिंसा थे । प्राणी मात्र को अपनी आत्मा समझकर इन पर विशेष जोर दिया । उनका कहना है—

भूला वे अहमक नादाना, जिन हरदम राम हि ना जाना ॥

शब्द ५७ ॥ अर्थ—जिसने प्राणी मात्र को अपनी आत्मा नहीं समझा, वह मूर्ख-शैतान अपने आत्म तत्व को ही भूल गया ।

साखी—जीव बिना जिव जिवे नहीं, जीव का जीव आधार ।
जीव दया कर पालिये, पण्डित करो विचार ॥ १७४ ॥

अधार—एक जीव का अन्य जीवों से रक्षित हुए बिना जीवन नहीं चलता, अतएव सभी जीवों की रक्षा अपनी आत्मा समझकर करनी चाहिये ।

साखी—हौं बिगड़ाने ओर को, बिगड़ो नहीं बिगाड़ो ।
सब घट एकै प्राण है, चोट काहि पर डारो ॥३४५॥

अर्थ—यह जीव अनादि काल से ही स्वरूप से पतित

होकर कष्ट भोग रहा है, फिर इस बिगड़े हुए जीव को तुम अब अधिक कष्ट मत पहुँचाओ' सभी शरीरों में एक ही चैतन्य देव विराजमान है। फिर तुम किसको कष्ट पहुंचाते हो ?

साखी — जिव जनि मारो बापुरा, सबका एके प्राण।
हत्या कबहुँ न छूटि है, कोटिं हीरा दे दान ॥२१४॥

साखी — जीव जनि मारो बापुरा, बहुरि खेत वै कान।
हत्या कबहुँ न छूटि है, कोटिन सुनो पुरान ॥२१५॥

॥ प्रकरण ५५ समाप्त ॥

॥ ५६ ॥ सत्य ॥

साखी — सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप ॥३३९॥

आप = ब्रह्म स्वरूप।

साखी — सब ही ते सांचा भला, जो दिल सांचा होय।
सौंचा बिना सुख नहिं है, कोटि करे जो कोय ॥६६॥

सांच हि श्राप न लागे, सांचहि काल न खाय।
सांचहि सांचा जो रहे, ताको काह नशाय ॥३२३॥

साखी—जो तैं सांचा बनिया, सांची हाट लगाव।
अन्दर झारू देई के, बाहर कूड़ा बहाव ॥६७॥

हाट = संगत। झारू = विवेक। कूड़ा = दुर्वासना।

साखी—सुकृत वचन माने नहीं, आप न करे विचार ।
कहँहि कबीर पुकारि के, स्वप्ने गया संसार ॥६८॥

सुकृत = पुण्यमयी ।

साखी—सांचा शब्द कबीर का, प्रगट कहे जग माँहि ।
जैसे को तैसा कहे, सो तो निंदा नाहिं ॥३३६॥

प्रकरण ५६ समाप्त

॥ ५७ नाम ॥

साखी-बन्दि मनावे ते फल पावे, बन्दि दिया सो देय ।
कहहिं कबीर ते उबरे, निशि दिन नाम हि लेय ॥र० ९ ॥

बन्दि मनावे = सकाम कर्मी । नाम हिं = निष्कामी ।

साखी—राम नाम अति दुर्लभ औरन ते नहिं काम ।
आदि अंत औ युग-युग, राम हि ते संग्राम ॥र०७६॥

राम हि ते संग्राम = सदैव स्वरूप चिंतन करते रहें ।

साखी—सुमिरन करहु राम का, काल गहे है केश ।
ना जीने कब मारिहैं क्या घर क्या परदेश ॥र ०१९

काल=मृत्यु । केश=बाल ।

साखी-भ्रम के बाँधल ई जगत, कोइ न करे विचार ।
हरि की भक्ति जाने बिना, बूड़ मुवा संसार ॥र०७४॥

साखी—इच्छा करि भवसागर, बोहित राम अधार ।
कहहिं कबीर हरि शरण, गोखुर बच्छ विस्तार ॥र०७६॥

गोखुर......सागर का विस्तार गोखुर के समान हो जायगा।

कहरा प्रकरण में कई जगह राम नाम का स्मरण कहा गया है — राम नाम भजु राम नाम भजु। इत्यादि।

ये तत्व राम जपहु हो प्राणी ॥ शब्द १९ ॥ भजिये निर्गुण राम को। इत्यादि।

प्रकरण ५७ समाप्त

॥ ५८ ॥ भक्ति ॥

साखी--प्रेम पाट का चोलना, पहिर कबीरा नाच।
पानप दीन्हा ताहि को, तन मन बोले साँच ॥६१॥

पानप = प्रतिष्ठा। पाट = वस्त्र।

साखी--भक्ति पियारी राम की, जैसी प्यारी आगि।
सारा पट्टन जर गया, फिर फिर लावे माँग ॥२६२॥

पट्टन = शहर। प्रेम वाण एक सतगुरु, दीन्हा गाढ़ो तीर कमाना हो ॥ कहरा ५ ॥

विरहः — इष्ट प्राप्ति की उत्कट जिज्ञासा वा प्रेम की चरमावस्था में शरीर के भान को भूल जाने का नाम विरह है सो विवेकी अविवेकी दोनों में सम्भव है, केवल भावना का भेद है यहाँ पहिले अधूरे प्रेम को कहते हैं---

साखी--विरह की ओदी लाकड़ी, सपुचे व धुधुआय।
दुःख ते तब ही बाँचि हो, जब सकलो जरि जाय ॥७७॥

ओदी = गीली। सपुचे = जल छोड़ती है। धुधुंआय = धुँआ देती है।

भाव है कि अधूरा प्रेमी गीली लकड़ी की तरह बीच में ही पड़ा रहता है। पूर्ण होने पर ही सुखी होता है। अब दोनों पक्षों में लागू होने वाले विरह को कहते हैं—

साखी--विरह बाण जेहि लागिया, औषध लागे न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिये, उठे कराहि-कराहि॥७७॥

औषध = कोई संसारिक उपाय। सुसुकि = अंतर्वेदना में पड़ा रहता है।

साखी--विरह भुवंगम पैठि के, कीन्ह कलेजे घाव।
साधु अंग न मोरही, ज्यों भावे त्यों खाव॥१०३॥

भुवंगम = सर्प। कलेजे घाव = हृदय में प्रेम रूपी डंक। अंग न मोरही = घबराता नहीं। ज्यों भावे...... प्रेम में जैसी कुछ दशा गुजरे स्थिर रहता है।

साखी--करक करेजे गड़ी रहा, वचन वर्छि के फाँस।
निकसाये निकसे नहीं, रहा न काहूं गाँस॥१०६॥

करक करेजे......हृदय रूप कलेजे में घस कर पीड़ित कर रहा है, उत्कंठित कर रहा है। वचन......इष्ट संबंधि वचन रूप बर्छी के घाव। काहूं गाँस = पूर्व संस्कार के साथ संयोजित हो गयी।

साखी--विरह भुवंगम तन डस्यो, मंत्र न माने कोय ।
राम वियोगी ना जिये, जिये तै बौरा होय ॥१०७॥

मंत्र......किसी युक्ति से दूर नहीं होता। बौरा......पागल के समान अपनी मस्ति में रहता है।

साखी--राम वियोगी विकल तनु, इन दुःख वे जनि कोय ।
छूवत ही मरि जायेंगे, ताला वेली होय ॥१०६॥

इन दुःख वे......कोई इन्हें अन्य विषय छेड़कर कष्ट न पहुँचावे। मरि जायेंगे — मृतक तुल्य हो जायेंगे। ताला वेली = घबराहट।

साखी--राम नाम जिन चीन्हिया, झीने पिंजर तास ।
नयन न आवे निंदरी, अंग न चढिया मांस ॥५५॥

झीने.......उसका शरीर दुर्बल रहता है।

राम......राम नाम के महत्व को जिसने पहचान लिया। निंदरी = नींद। अंग......शरीर पुष्ट नहीं होता। विवेक पक्ष में--बुद्धि में तमोगुण नहीं आता और देहाभिमान से रहित होता है।

साखी--जो जन भींजे राम रस, विकसित कबहूँ न रूख ।
अनुभव भाव न दरशये, ते नर सुख न दुःख ॥ ५ ॥

विकसित.....अनुभव में मस्त होने से उन्हें कोइ सुख दुःख का अनुभव नहीं होता।

साखी--गही टेक छोड़े नहीं, चोंच जीभ जरि जाय ।
ऐसा तप्त अंगार है, ताहि चकोर चवाय ॥३९॥

चकोर भरोसे चन्द्र के, निगले तप्त अंगार।
कहँहि कबीर डाहे नहीं, ऐसी वस्तु लगार ॥४०॥

डाहे नहीं......क्या, नहीं जलाता है ? अवश्य जलाता है किन्तु उसका मन दृढ़ता से चन्द्रमा में लगा होने के कारण जलन महसूस नहीं करता। इस प्रकार सच्चा प्रेमी आपत्ति से नहीं घबराता। इष्ट चिंतन में लगा रहता है।

कल्पित विरही

साखी--विरहीन साजी आरती, दर्शन दीजे राम।
मुये दर्शन देहुगे, आवत कौने काम ॥२६७॥

जो मतवाले राम के, मगन रहे मन माँहि।
ज्यों दर्पण की सुन्दरी, गहे न आवे बाँहि ॥२७८॥

अर्थ—जो मनुष्य कल्पित राम में मतवाले होकर मन ही मन मग्न रहते हैं, उनका वह मग्न होना मन-मोह के ही तुल्य है, क्योंकि दर्पण में देखी गई सुन्दरी कभी हाथ नहीं आती।

वह तो मात्र देखने के लिए है। भाव है कि मन के एकाग्र होने से ध्यान में भावना की जो मूर्त्ति प्रतीत होती है उसको ही अविवेकी अपना इष्ट समझकर प्रसन्न होता है। वास्तव में वह तो मन का चित्र है। स्वरूप ज्ञान के बिना शांति नहीं मिल सकती।

प्रकरण ५८ समाप्त

॥ ५९ ॥ पुरुषार्थ ॥

साखी--करू बहियाँ बल आपनो, छांड़ बिरानी आस ।
जाके आंगन नदिया बहे, सो कस मरे पियास ॥२७७॥

बिरानी = कल्पित ईश्वरादि की । आँगन = हृदय । नदिया बहे = हृदय रूपी आँगन में आत्मानंद रूपी जल भरा है ।

साखी--जैसी लागी ओर की, तैसी निबाहे छोर ।
कड़ी कौड़ी जोर के, जुटे लक्ष करोड़ ॥२९७॥

भाव—लगन के साथ साधन में लगे रहने से अवश्य सिद्धि की प्राप्ति होती है ।

साखी--भूला सो भूला बहुरि के चेतना ।
ज्ञान की छुरी से संशय का रेतना ॥३२९॥

साखी--हंसा तू तो सुवरण वरण, क्या वरणू मैं तोहि ।
तरुवर पाय पहिलि हो, तबे सराहो तोहि ॥१४॥

अर्थ—हे जिज्ञासु ! तुम सच्चिदानंद स्वरूप हो । तुम्हारा क्या वर्णन करूँ । तेरा स्वरूप अवर्णनीय है । किंतु तुम अविद्या रूपी वृक्ष से लिपटे हो, इसे दूर करो तो तुम प्रशंसा के योग्य हो जाओगे ।

साखी--कुल मर्यादा खोय के, खोजिन पद निर्वाण ।
अंकुर बीज नशाय के, नर भये विदेही थान ॥२०३६॥

भाव—पुरुषार्थ सिद्ध ज्ञानी पुरुष सकल वासना को नष्ट करके देह रहते विदेही होते हैं।

साखी—सहज शून्य मन सुमिरते प्रगट भई एक जोत।
बलिहारी तेहि पुरुष की, निरालम्ब जो होत ॥र० ६ ॥

अर्थ—सहज धारणा से मन को शून्य करने पर एक ज्योति प्रगट होती है, उस विवेकी पुरुष को धन्यवाद है जो इसमें आसक्त न होकर परम तत्त्व में लीन होता है।

प्रकरण ५९ समाप्त

०

॥६०॥ ज्ञान का प्रभाव ॥

साखी—जाहु वैद घर आपने, बात न पूछे कोय।
जिन यह भार लदाइया, निरवाहेगा सोय ॥ २ ॥

भाव—महात्मा बिल्कुल निर्द्वन्द्व होते हैं।

साखी—सिंह अकेला वन रमे, पलक-पलक करे दौर।
जैसा बन है आपना, तैसा वन है और ॥परि०१७॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष ज्ञान के प्रभाव से स्वतंत्र होकर संसार रूप जंगल में निर्द्वन्द्व विचरते हैं और सर्वदा यही विचारते रहते हैं कि जैसा यह संसार तुच्छ है वैसे ही परलोकादि भी तुच्छ हैं।

साखी--जो जियरा अवसर बसे आश न राखे कोय।
कहँहि कबीर तेहि दुचित का, मिला मिलाया सोय ॥परि० १८॥

भाव----ज्ञानी पुरुष आशा हीन शांत चित्त होकर स्वतन्त्र होकर परमानंद में मग्न रहते हैं।

साखी----घर में बैठा आपु विराजे, बाहर दीखे सोय।
खोजि-खोजि सब थकित भये, पार न पावे कोय ।।परि० १९।।

भाव—शांत स्वरूप में विराजने वाले महात्मा को कोइ अज्ञानी जन नहीं जान सकता। उस महात्मा को सब बाहर भीतर सब अपना ही अनुभव होता है।

साखी--हद चले सो मानवा, बेहद चले सो साध।
हद बेहद दोनों तजे, ताका मता अगाध ।।१८१।।

अर्थ—लौकिक सीमा के अन्दर चलने वाला साधारण मनुष्य है और लौकिक सीमा से उठकर स्वरूप साधन में लगने वाला साधु जिज्ञासु होता है तथा इन दोनों से उठकर स्वरूप में स्थिर होने वाले की गति अगाध होती है, उनके ऊपर कोई विधान नहीं, ज्ञानी निरंकुश होते हैं।

साखी--ज्यों गिरि सायर मुकुर में, भीजि भरि कछु नाहि।
ऐसे सुख दुःख रहित है, ज्ञानी के घट माँहि ।।३५२।।

अर्थ—जैसे दर्पण में समुद्र व पहाड़ के प्रतिबिंब दीखते हुए भी वह न तो भीजता है और न दबता है। उसी प्रकार ज्ञानी के हृदय में सुख दुख का आभास रहते हुए भी वास्तव में सुख दुःख से रहित ही होते हैं।

साखी--यह मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्म ज्ञान।
जेहि बैसन्दर जग जरे, सो पुनि उदक समान ॥३३२॥

अर्थ—जिस अज्ञान रूपी अग्नि से यह सारा संसार जल रहा है वह ससार महात्माओं के लिये शीतल ही होता है। क्योंकि हृदय में स्वरुप ज्ञान के उदय होने से उनका चित्त शांत हो जाता है।

प्रकरण ६० समाप्त

॥ मूल तत्व विषयक श्रुति प्रमाण ॥

१. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। तैत्तिरीयोपनिषद्--वल्ली २ अनुवाक १ मंत्र १

अर्थ—ब्रह्म सत्य अनंत और ज्ञानस्वरूप है।

२. यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कुतश्चन। (तै. २-९-१)

अर्थ—जहाँ से मन के सहित वाणी उसे न प्राप्त करके लौट आती है। उस ब्रह्म के आनंद को जानने वाला किसी से भी भयभीत नहीं होता।

३. सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। छा०६-२-१।

अर्थ--हे सौम्य। आरम्भ में यह सत्य एक अद्वितीय ही था।

४. "स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदँ सर्वं तत् सत्यँ स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो।" (छा० ६-९-३।)

अर्थ–वह जो यह महिमा है एतद् रूप ही है यह सत्य हैं और हे श्वेतकेतो वही तू है।

५. अयं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति (बृहदारण्यक-४-२-१४)

अर्थ—यह पुरुष स्वयं ज्योति है।

६. असङ्गो ह्ययं पुरुषः (बृह० ४-२-१५)।

अर्थ–यह पुरुष असंग है।

७.–साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च–श्वेताश्वतर। ६-११

अर्थ–सबका साक्षी सबको चेतनत्व प्रदान करने वाला शुद्ध और निर्गुण है।

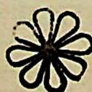
८. निष्कलं निष्क्रियँ शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥

श्वेता० ६-१९ ॥

अर्थ–परमात्मा कलाहीन, क्रियाहीन, शांत, अनिन्द्य और निर्लेप है।

९. नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् ॥ श्वेता० ६-१३॥

अर्थ–परमात्मा नित्यो में नित्य है और चेतनो में चेतन है।



॥ भजन ज्ञान योग ॥

भजन १

निजरूप लखो रे भाई। पर रूप में कहाँ भुलाई ॥ १ ॥

सत् चित् आनन्द रूप तुम्हारा। तामें रहो समाई।
तासे भिन्न सभी पररूपी। नाम रूप कहलाई ॥ २ ॥

नाम रूप माया का खेला। काल जाल फैलाई।
तामें बँधकर भया सकेला। तू अकेल है भाई ॥ ३ ॥

स्वयं प्रकाश सब ही में व्यापक। है सबहि से न्यारा।
अज अद्वैत अखण्ड एकरस। मन वाणी के पारा ॥ ४ ॥

नाम रूप सन्तन जो गाये। सो संकेत पिछांनो।
जाका वे संकेत किये हैं। भली भाँति तेहि जानो ॥ ५ ॥

पद०—निज रूप लखो रे भाई। पर रूप में कहाँ भुलाई ॥१॥

अर्थ--हे जिज्ञासुओं! अपने आनन्द स्वरूप का बोध करो, स्वरूप भिन्न पररूप अर्थात् अनात्म में क्यों लगे हो।

प्रश्न--मैं हूँ इस रूप से मैं आत्मा को जान ही रहा हूँ फिर क्या बोध करूं?

उत्तर--मैं हूँ, इसमें क्या आप अनात्म लपेट रहित होकर बोल रहें हैं? हरगिज नहीं किंतु कल्पित नाम रूप के लपेट से ही बोल रहे हैं, इसलिये आप शुद्ध स्वरूप से वंचित हैं ॥१॥

पद०--सत् चित आनन्द रूप तुम्हारा, ता में रहो समाई।
तासे भिन्न सभी पर रूपी, नाम रूप कहलाई ॥२॥

अर्थ—आत्मा शुद्ध स्वरूप सच्चिदानन्द है अर्थात तीनों काल में अबाध्य होने से सत है, ज्ञान मय होने से चित् है तथा सर्व दुःख रहित होने से स्वयं आनन्द रूप है। अतएव सच्चिदानन्द स्वरूप से भिन्न सभी अनात्म पदार्थ नाम रूप कहलाते हैं।

श्रुति—सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। तै० २-१-१।

आनन्दं ब्रह्मणों विद्वान्। न विभेति कुतश्चनेति ।। तै० २-९-१।

अर्थात् ब्रह्म सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप और अनन्त है। इस आनन्द को जाननेवाला किसी से भयभीत नहीं होता। सारे ब्रह्माण्ड का सुख ब्रह्मानन्द की केवल एक मात्रा है।

श्रुति—एषास्य परमागतिरेषास्य परमासंपदेषोऽस्य परमोलोक एषोऽस्य परमानंद एतस्यैवानन्दस्यान्यानिभूतानि मात्रामुपजीवन्ति ।।

(बृहदारण्यक ४-३-३२ ।।)

अर्थ—यह इसकी परम सम्पत्ति है, यह इसका परमलोक है, यह इसका परमानन्द है। इस आनन्द को मात्रा के आश्रित ही अन्य प्राणी जीवन धारण करते हैं।

श्रुति—यो वै भूमा तत्सुखं नाऽल्पे सुखमस्ति।
यदल्पं तन्मर्त्यम् ।। ७-२४-१।। छा० ७-२३-१ ।।

अर्थ—निश्चय ही जो भूमा है वही सुख है। अल्प में सुख नहीं। जो अल्प है वह नाशवान है।

श्रुति—यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा ।।

छा० ७-२४-१।।

अर्थ—जहाँ कुछ और नहीं देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता, वह भूमा है (इसके विपरीत अल्प है)।

इस नाम रूपी की प्रतीति कैसे होती है—इस पर कहते हैं—

पद०—नाम रूप माया का खेला, काल जाल फैलाई।
तामें बंध कर भया सकेला, तूं अकेल है भाई ।। ३ ।।

अर्थ--यह नाम रूप माया की रचना है जिसने काल रूप होकर जगत-जाल फैला रखा हैं। इस अविद्या के साथ अन्योन्याध्यास करके तू प्रपंची बना है, यथार्थतः तू प्रपंच रहित स्वयं ब्रह्म स्वरूप है ॥३॥

साखी--मच्छ रूप माया भई, जो रहि खेल अहेर।
हरि हर ब्रह्म न उबरे, सुर नर मुनि केहि केर ॥
बीजक रमैनी ४६ ॥

अर्थ--माया भोग्य पदार्थ होकर जीवों के साथ शिकार खेलती है। त्रिदेवों सहित देव मुनि भी कोइ इससे नहीं बचे।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभि जानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
गीता अ० ७ श्लोक १३-१४ ॥

अर्थ--इन त्रिगुणी, भावों से सारा संसार मोहित हो रहा है, इसलिये वह अपने परम अविनाशी स्वरूप को नहीं जानता ॥१॥ ब्रह्म के आश्रित रहने वाली इस त्रिगुणी दैवी माया को पार करना कठिन है। ब्रह्म तत्व के पूरे अभ्यासी ही इस माया को तर जाते हैं ॥२॥

साखी--हंसा तू तो सबल था, हल्की अपनी चाल।
रंग कुरंगे रंगिया, किया और लगवार ॥१॥ बीजक साखी १५॥

अर्थ--हे हंस ! तू तो शुद्ध स्वरूप था किंतु अपनी अज्ञानता से अपने ऊपर और कोई भिन्न ईश्वर मान कर प्रपंच में डूब गया।

साखी--हंसा तू सुवरण वरण क्या बरणू मैं तोहि।
तरुवर पाय पहेलिहों, तवे सराहो तोहि ॥ बीजक साखी १४॥

अर्थ-- हे हंस ! तू तो सुवर्ण के समान शुद्ध स्वरूप है किंतु अविद्या रूपी प्रपंच वृक्ष के लपेट से बच जाओगे तब धन्यवाद के पात्र बनोगे। संकेत रूप विशेषण के साथ स्वरूप का बोध करते हैं--

पद: —स्वयं प्रकाश सब ही में व्यापक, है सबही से न्यारा ।
अज अद्वैत अखण्ड एक रस, मन वाणी के पारा ॥४॥

अर्थः — आत्मा स्वयं प्रकाश अर्थात् अपने प्रकाश से प्रकाशित सर्वत्र परिपूर्ण होकर भी प्रपंच से रहित है, नाम रूप से भिन्न तथा अस्ति, भाति और प्रियहै, पुनः जन्म रहित, द्वैत रहित, अखण्ड, एक रस, मन वाणी से परे है ।

प्रमाण—न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वं मिदं विभाति ॥
मु० २-२-१० ॥

अर्थ — उस आत्म स्वरूप ब्रह्म में न सूर्य प्रकाशित होता है न चन्द्रमा या तारे वहाँ यह बिजली भी नहीं चमकती फिर यह अग्नि किस गिनती में है । उसके प्रकाशित होने से ही सब प्रकाशित होते हैं । और यह सब कुछ उसी के प्रकाश से प्रकाशमान है ।

श्लोक — यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ गीता अ० १५।१२

अर्थ — सूर्य में विद्यमान जो तेज सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है और जो तेज चन्द्र में तथा अग्नि में विद्यमान है वह तेज मेरा (ब्रह्म का) है ।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥कठ-२-६-१२॥

अर्थ — यह आत्मा न वाणी से, न मन से और न नेत्र से ही प्राप्त किया जा सकता है वह 'है' ऐसा कहने वाले से अन्यत्र (भिन्न पुरुषों का) किस प्रकार उपलब्ध हो सकता है ।

प्रश्न — आप नाम रूप का जो निषेध करते हैं तो संतो ने नाम रूप का उपदेश कैसे किया-?

उत्तर: — नाम रूप चार प्रकार से जाना जाता है । १ — यह सारा ब्रह्माण्ड ही नाम रूपात्मक है । २ — इस नाम रूप का चित्र ही आपने हृदय में धारण

किया है और हर क्षण नया चित्र खींचते ही रहते हैं। ३—गुरुवा लोगों ने जिस आसमानी अड्डे की कल्पना कर उसके नाम रूप की कल्पना की है। ४—चित्त निरोध के लिये संतो ने जो ब्रह्म बोधक नाम का संकेत किया है।

इसमें प्रथम नाम रूप व्यावहारिक है वह हमें विचार पूर्वक यथोचित रीति से व्यवहार में ग्रहण करने योग्य है। दूसरा नाम रूप जो हृदय में पड़ा है वह स्वरूप को आवृत्त करने वाला है, अतएव इस मनोराज्य को दूर करना अति आवश्यक है। तीसरा गुरुवा का नाम रूप स्वरूप से भटकाने वाला है अतएव यह भी त्याज्य है। चौथा सन्तों का दिया हुआ स्वरूप संकेतक नाम रूप चित्त को निर्मल बनाने के लिये अभ्यास की पूर्णता पर्यन्त सेवन करें।

दोहा—निराकार वह राम है, लखि न सकै कोइ अंत।
जो सकार को चाहिये, तो प्रत्यक्ष गुरु सन्त ॥१॥

पदः—नाम रूप संतन जो गाये, सो संकेत पिछानो।
जाका वे संकेत किये हैं भली भांति तेहि जानो ॥ ५ ॥

याच है कि नाम के सहारे नामी का अनुभव करें। सुग्गे की तरह रटने से कोई लाभ नहीं। यथा—राम के कहे जगत गति पावे, खांड़ कहे मुख मीठा ॥ बीजक शब्द १०६ ॥ इस वास्ते स्वयं स्वरूप में स्थित हो।

पदः—निज स्वरूप में स्थित होवे, तब ही बने अकेला।
विजय वही तब मुक्त कहावे, मिट गये सकल झमेला ॥ ६ ॥

अर्थ—स्वयं स्वरूप में स्थित होने पर ही सभी प्रपंच का झमेला मिटकर परम मुक्त होते हैं।

श्लोक—भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ मु० २-२-८॥

अर्थ—स्वरूप में स्थित होने वाले की हृदय की सभी ग्रन्थियाँ कट जाती हैं। सभी संशय निवृत हो जाते हैं, सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं, उनकी बुद्धि ब्रह्म में स्थित रहती है।

भजन २

ॐ कहो या राम कहो। सोहं या सतनाम कहो।
संकेत सभी परमातम। इस नाम के भीतर तत्वगहो ॥ १ ॥
रूप सभी सांकेतिक हैं। उनके भीतर घुस जाओ।
छोड़ सकेला बनो अकेला। परमारथ पद को पाओ ॥ २ ॥
क्या प्रतिभाषिक क्या व्यवहारिक। दोनों नट का खेल अहै।
पारमार्थिक त्रिगुण से न्यारा। निर्गुण स्वयं प्रकाश कहे ॥३॥
ईश जीव का भेद मिटाकर। इक अखंड चेतन जानो।
द्वैत अद्वैत सभी पक्ष त्यागो। निजस्वरूप को पहिचानो ॥४॥
सतगुरु भक्ति योग मन संयम। निजानंद में मन लावे।
श्रवण मनन निदिध्यासन करके। विजय परम पद को पावे ॥५॥

पदः—ॐ कहो या राम कहो, सोहं या सतनाम कहो।
संकेत सभी परमातम, इस नाम के भीतर तत्व गहो ॥ १ ॥

अर्थ—सन्त के दिये नाम के विषय में कहते हैं कि रामादि कोई भी नाम परमात्म तत्व के लिये इशारा मात्र है। अतएव नाम के सहारे नामी को प्राप्त करो।

साखी—नाम मिलाने रूप को, जो जन खोजी होय।
जब वह रूप हृदया बसे, क्षुधा रहे नहिं कोय ॥ गुरु महिमा ॥

पदः—रूप सभी सांकेतिक है, उनके भीतर घुस जाओ।
छोड़ सकेला बनो अकेला, परमारथ पद को पाओ ॥ २ ॥

अर्थ—रूप से रूपवाले का बोध होता है, इसलिये उस रूप के सहारे रूप वाले अर्थात् स्वरूप में स्थित हो। यदि कोइ कहे कि प्रातिभाषिक असत्य होता है, व्यावहारिक तो सत्य ही होता है। इस पर कहते हैं—

पदः—क्या प्रतिभाषिक क्या व्यवहारिक, दोनों नट का खेल अहै।
पारमार्थिक त्रिगुण से न्यारा, निर्गुण स्वयं प्रकाश कहै ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रातिभाषिक के समान व्यावहारिक पदार्थ भी नट के खेल के समान मिथ्या ही हैं। क्योंकि जो पदार्थ पहले नहीं, पीछे नहीं, वह बीच में सत्य कैसे होगा। यथार्थ वस्तु तो त्रिगुण रहित, निर्गुण, स्वयं प्रकाश रूप है।

श्रुति—आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा। वितथैः सदृशाः सन्तो वितथा इवलक्षिताः ॥ गौड कारिका वैतथ प्रकरण श्लोक ॥ ६ ॥

अर्थ—जो आदि और अन्त में नहीं है। अर्थात् आदि और अन्त में असद्रूप है। वह वर्त्तमान में भी वैसा ही है। यह पदार्थ समूह असत् होकर भी सत् सदृश दिखाई देता हैं।

श्रुति—साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। श्वेता ६-११ ॥

अर्थ—वह परमात्मा साक्षी चेतन केवल निर्गुण स्वरूप है।

श्रुति—निर्गुणं, निष्क्रियं, शान्तं, निरवद्यं निरञ्जनम्। श्वेता० ६-१९ ॥

अर्थ—वह परमात्मा तीनों गुणों से रहित, क्रिया रहित, शांत, व्याधि रहित व माया रहित है। इसलिये—

पदः—ईश जीव का भेद मिटाकर, इक अखण्ड चेतन जानो।
द्वैत अद्वैत सभी पक्ष त्यागो, निज स्वरूप को पहिचानो ॥४॥

अर्थ—ईश्वर-जीव का जा द्वैत रूप प्रतीत हो रहा है, उसे भाग-त्याग लक्षणा से तत्वमसि का विवेक कर एक अखण्ड चेतन स्वरूप को समझो। इस प्रकार द्वैत को त्याग कर अपने सत्य स्वरूप का अनुभव होने पर अद्वैत भी कहने को नहीं रह जायगा। क्योंकि एक शब्द भी तो सापेक्षिक है।

साखी—एक कहौ तो है नहीं, दोय कहो तो गारि।
है जैसा रहे तैसा, कहहिं कबीर विचारि। बीजक १२६॥

अर्थ - एक शब्द तो अनेक की अपेक्षा से कहा जाता है, अनेक के न होने पर एक भी कहने को नहीं रह जाता. और अनेक कहो तो यह भारी दोष है। (पृ० न० ८ साखी १२६ में देखिये)। अखंड चेतन को खंड खंड करना है इसलिये भक्ति योग तथा ज्ञान द्वारा परमानंद का लाभ लेना चाहिये।

पदः—सतगुरु भक्ति योग मन संयम, निजानंद में मन लावे।
श्रवण मनन निदिध्यासन करके विजय परम पद को पावे ॥ ५ ॥

अर्थ—सतगुरु की सेवा रूप भक्ति, मन का संयम रूप योग तथा स्वरूप ज्ञान में श्रवण, मनन व निदिध्यासन कर मोक्ष प्राप्त कर लें ॥ ५ ॥

कवित्त—श्रवण मनन कर जब सब सो उदास होय
चित्त को एकाग्र आनि गुरु मुख सुनिये।
बैठि के एकान्त ठौर अंतःकरण माहि
मनन करत वाही ज्ञान गुनिये।
ब्रह्म अपरोक्ष जानि कहत है अहं ब्रह्म
सोहं सोहं होय तथा निदिध्यासन धुनिये।
सुन्दर साक्षात्कार कीट ही ते होत भृंग
सुन्दर पारे ते गल पानी ह्वै रहिये।
(सुन्दर विलास)

इस विषय की पुष्टि में अनेक युक्तियाँ सुन्दर विलास में आत्मानुभव के पक्ष में दी गयी हैं। वहीं देखना चाहिये ॥

श्रुति—आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ॥बृहदा० २-३-५॥

अर्थ—यह आत्मा ही दर्शन करने योग्य, श्रवण करने योग्य, मनन करने योग्य और ध्यान करने योग्य है। इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण. मनन एवं विज्ञान से ही सबका ज्ञान हो जाता है ॥५॥

अब जिज्ञासुओं को सत् असत् के निर्णय के लिये उपदेश करते हैं—

भजन ३

हंसा हंस बुद्धि गहि लीजै ॥
जड़ चेतन का करो विवेका। न्यारो न्यारो कीजै ॥ १ ॥
चेतन एक अखण्ड ब्रह्म है। सर्वात्म सुख रूपा।
निर्गुण निष्क्रिय निरालंब है। अमृत परम अनूपा ॥ २ ॥

माया त्रिगुण जड़ असत है। काल जाल दुखदाई।
जड़ चेतन की ग्रन्थी लगाकर। सकल जीव भ्रमाई॥ ३॥
तू द्रष्टा सब ही को परखे। तोहि नहिं परखे कोई।
निरालंब चेतन जब होवे। तब त्रिपुटी लय होई॥ ४॥
निर्गुण कभी सगुण नहीं होता। व्यापक सगुण माँहि।
माया माँहि आभास ब्रह्म के। सगुण ब्रह्म कहलाही॥ ५॥

पदः - हंसा हंस बुद्धि गहि लीजे।
जड़ चेतन का करो विवेका, न्यारो न्यारो कीजे॥ १॥

अर्थ - हे जिज्ञासु! मिले हुए जल और दूध को अलग-अलग करने की बुद्धि जैसे हंस में होती है, वैसे ही सत् असत् निर्णय करने का विवेक जिज्ञासु में होता है, इसलिये जड़ चेतन का विवेक कर अलग-अलग करो।

रमैनी: - क्षीर नीर का करे निवेरा। कहहि कबीर सोई जन मेरा॥
॥ बीजक शब्द ६७॥

अब उसी चेतन के विवेक को कहते हैं। ब्रह्माण्ड में जड़ चेतन दो ही पदार्थ हैं। जड़-चेतन, माया-ब्रह्म, द्वैत-अद्वैत, असत्-सत्, सगुण-निर्गुण ये सभी यथार्थ शब्द हैं।

पदः - चेतन एक अखण्ड ब्रह्म है, सर्वात्म सुख रूपा।
निर्गुण निष्क्रिय निरालम्ब हैं, अमृत परम अनूपा। २॥

अर्थः - सबका प्रकाशक परिपूर्ण सर्वाधिष्ठान, सुख स्वरूप त्रिगुण रहित, क्रिया रहित, निराश्रय, अविनाशी, महान, उपमा रहित है, उपलक्षण से असंग भी है। यह सब चेतन की महिमा है।

पदः - माया त्रिगुण जड़ असत् है, काल जाल दुखदाई।
जड़ चेतन की ग्रन्थी लगाकर सकल जीव भ्रमाहि॥ ३॥

अर्थः - चेतन के विपरीत माया तो जड़ असत् काल रूप दुखदाई है, जड़ चेतन का अन्योन्याध्यास (दोनों की परस्पर लपेट) सभी जीवों को अनन्त काल तक अनन्त योनियों में भ्रमाने वाली है।

शब्द २ —माया महा ठगिनि हम जानी । त्रिगुण फाँस लिये कर डोले बोले मधुरी वाणी ॥ बीजक ॥ चेतन सभी को जानता है, चेतन को कोई नहीं जानता, इस बात को कहते हैं—

पदः —तू द्रष्टा सबहो को परखे, तोहि नहि परखे कोई ।
निरालम्ब चेतन जब होवे तब त्रिपुटी लय होई ॥ ४ ॥

अर्थ--सारे जड़ पदार्थ का प्रकाशक तूँ ही सबको जानने वाला है, तुमको कोई (जड़ पदार्थ) नहीं जान सकता । जब यह विशिष्ट चेतन (जीव निरालम्ब होता है तब ज्ञाता (जानने वाला) ज्ञान (जानना) ज्ञेय (जानने योग्य) तीनों त्रिपुटी स्वरूप में लीन हो जाते हैं, एक अद्वैत ब्रह्म ही शेष रहता है ।

श्रुति—येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे तं केन विजानीयादिति । वृह० २-३-१४ ॥

अर्थ--जिसके द्वारा इस सबको जानता है उसे किसके द्वारा जाने ? विज्ञाता को किसके द्वारा जाने ? कोइ निर्गुण को सगुण होना मानते हैं इस पर कहते हैं--

पदः--निर्गुण कभी सगुण नहीं होता, व्यापक सगुंण माहि ।
माया माँहि आभास ब्रह्म का, सगुण बूह्म कहलाही ॥ ५ ॥

अर्थ—निर्गुण कभी सगुण नहीं होता किन्तु सगुण में व्यापक है । क्योंकि निर्गुण बूह्म है और सगुण माया, इसलिये बूह्म कभी भी माया नहीं हो सकता किन्तु अपनी सत्ता से माया को प्रकाशित कर रहा है । चेतन कभी जड़ नहीं होता किन्तु जड़ का प्रकाशक है । कोई काष्ठ में छिपे अग्नि के समान सगुण मानते हैं तो यह अयुक्त है । यह जानना चाहिये कि काष्ठ के भीतर सूक्ष्म अग्नि है और प्रगट होने पर स्थूल हो जाती हैं । इस प्रकार मृत्पिंड ही घट कुण्डल होते हैं । स्वर्ण भाव तथा मृद्भाव ज्यों का त्यों रहता है । फिर काष्ठ का अग्नि मृद् व स्वर्ण क्रियमान है इससे पिण्ड रूप से अन्य रूप भी होते हैं । और बूह्म निष्क्रिय है इसीलिये वह कभी अन्य रूप नहीं हो

सकता। माया के संसर्ग से सगुण होना कहा जाय सो भी ठीक नहीं। जब लाख मन पीतल के भीतर एक रत्ती सोना भी पीतल नहीं हो सकता, तो सर्वत्र परिपूर्ण निराकार निर्गुण ब्रह्म जिसके आश्रय से माया है उसके क्रिया से ब्रह्म विचलित होकर सगुण हो जायेगा? हरगिज नहीं। जैसे आकाश के आश्रय वायु का झकझोर होते हुए भी आकाश कंपायमान नहीं होता वैसे ही माया की अनंत क्रिया से कूटस्थ विकृत नहीं हो सकता।

प्रश्न--फिर सगुण ब्रह्म कैसे कहते हैं?

उत्तर--माया में जो ब्रह्म का आभास है, वही माया विशिष्ट ईश्वर होकर सगुण ब्रह्म कहलाता है। माया का सारा कार्य-कलाप ब्रह्म या ईश्वर के मथ्थे मढ़कर कर्ता ईश्वर की कल्पना करते हैं, वास्तव में विशिष्ट ईश्वर भी ब्रह्म की सत्ता मात्र है इसके बल से ब्रह्माण्ड की सारी सारी व्यवस्था प्रकृति से चलती है।

श्लोक--कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्म फल संयोगे स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ गीता ५-१४॥

अर्थ--स्वयं आत्मा लोगों को कर्म में प्रवृत नहीं करता, इष्ट प्रद और अनिष्ट प्रद वस्तु की उत्पत्ति नहीं करता एवं प्राणियों को पुण्य पाप के फल का अनुभव नहीं कराता, किन्तु स्वभाव यानी प्रकृति ही उन सबको करती है।

श्लोकः--नाऽऽदत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनाऽऽवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ गीता ५-१५ ॥

अर्थ--परमात्मा न किसी के पाप को ग्रहण करता है और न किसी के पुण्य को ही ग्रहण करता है, अज्ञान से ज्ञान आवृत है, इसलिये जन्तुओं को मोह होता है। अगर कहा जाय कि यह तो शुद्ध ब्रह्म के कर्तृत्व का निषेध करता है विशिष्ट ईश्वर का नहीं क्योंकि इसी गीता में भगवान् ने कहा है--

श्लोक--"ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वं भूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ गीता १८-६१ ॥

अर्थ--हे अर्जुन जैसे सूत्रधार कठपुतलियों को नचाता है, वैसे ही परमेश्वर सब प्राणियों को माया से घुमाता हुआ सब प्राणियों के हृदय देश में रहता है। यथा छान्दोग्य उपनिषद में कहा है।

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय (६-२-३)

अर्थ--उस (सत्) ने ईच्छा की कि मैं बहुत होऊँ, अनेक प्रकार से उत्पन्न होऊँ ॥ इससे ईश्वर का कर्त्तापन सिद्ध होता है। तो यहाँ यह समझना चाहिये कि ये सब कर्तापन की बातें प्राण संवाद की तरह सृष्टि की शैली में अर्थवाद मात्र है। वास्तव में ईश्वर (ब्रह्मसत्ता) सबके हृदय में सर्वत्र व्यापक होकर प्रकृति का बल दाता है। ब्रह्म सत्ता माया के सत्वगुण में होने से निर्मल निर्विकार है और व्यापक होने से समान है, इससे इच्छा आदि से रहित प्रकृति के गुणों से युक्त है। फिर जीव मुक्त कैसे होगा ? इस पर कहते हैं--

पदः--सगुण पार करि निर्गुण पावे, सबै द्वैत बिसराई।
परमानन्द स्वरूप भयो जब विजय मुक्त कहलाई ॥ ६ ॥

अर्थ--संत गुरु की युक्ति जो पहिले श्रवणादि कह आये हैं उसी के द्वारा पंचकोषादि जो सगुण निर्गुण का घेरा है उसे पार कर, द्वैत को त्याग कर निर्गुण परमानन्द स्वरूप प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

छन्दः--पंच कोष से आतम न्यारा जानि सु जानहु ब्रह्म स्वरूप।
ताते भिन्न जु देखे सुनिये सो जानहु मिथ्या भ्रम कूप।
मिथ्या अधिष्ठान न बिगाड़े स्वप्न मांहि नि दरीद्री भूप।
सब कुछ कर्त्ता तउ अकर्त्ता तव अद्भुत रूप अनूप ॥

* विचार सागर के अनुसार कोष-१ अन्नमयकोष--स्थूल शरीर। २ प्राणमय कोष प्राण, अपान, समान, उदान, और व्यान ये पाँच प्राण। ३-मनोमय-कर्मेन्द्रियों सहित मन। ४-विज्ञानमय-ज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धि। ५-आनन्द मय--कारण शरीर, सुषुप्तावस्था। मिथ्या अधिष्ठान न बिगाड़े कल्पित वस्तु अपने आश्रय का कुछ बिगाड़ नहीं सकतो जैसे कल्पित सर्प से

रज्जू विषैली नहीं होती, मरुमरीचिका का जल बालू को गिला नहीं कर सकता। इसी प्रकार माया के विभिन्न प्रपंचों से ब्रह्म विकारी नहीं होता।

श्रुतिः—श्रोत्रस्य श्रोतं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्च-क्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ केन १-१-२ ॥

अर्थ—जो श्रोत्र का श्रोत्र, मन का मन और वाणी की वाणी है वही प्राण का प्राण चक्षु का चक्षु है [ऐसा जानकर] वीर पुरुष संसार से मुक्त होकर इस लोक से जाकर अमर हो जाते हैं।

श्रुति—यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ केन० १-१-५ ॥

अर्थ—जो मन से मनन नहीं किया जाता, बल्कि जिससे मन मनन किया हुआ कहा जा सकता है, उसी को तू ब्रह्म जान। जिस इस (देश-कालावच्छिन्न वस्तु) की लोक उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है।

सवैया—श्रोत न जानत चक्षु न जानत नाहि जो सुंघत घ्राणे।
ताहि स्पर्श त्वचा न सके पुनि जानत नाहि जो जीभ बखाने ॥
मन नहिं जानत बुद्धि न जानत चित्त अहंकार क्यों पहिचाने।
सुन्दर शब्दहु जानि सके नहिं आतम आपको आपहि जाने ॥
(सुन्दर विलास आत्म-अनुभव का अंग) ॥१॥
पिण्ड में है पुनि पिण्ड मिले नहिं पिण्ड पड़े पुनि त्योंहि रहावे।
श्रोत में है पर श्रोत सुनि नहिं दृष्टि में है पर दृष्टि न आवे ॥
बुद्धि में है पर बुद्धि न जानत चित्त में है पर चित्त न पावे।
शब्द में है पर शब्द थक्यो कहि शब्दहु शब्द सुन्दर बतावे॥

सुन्दर विलास ब्रह्मादि विषे कवित्त— आश्चर्य अंग ३—

ब्रह्म तो वही है सच्चिदानंद घन
निर्विकार निराकार स्वयं नित प्रकाशे है।
माया तो वही है सत रज तम गुण धार
नाना रूप नामों में उपजे औ विनाशे है।

ईश्वर तो वही हैं निज रूप को न भूले कभी
माया गहे माया से पृथक ही भासे है ।
जीव तो वही है जो अविद्या के संयोग पाय
भूला निजरूप भ्रम फांसना निकासे है ॥१॥

ब्रह्म तत्त्व के जानने वाले व न जानने वाले को लाभ हानिः-

सवैयाः-- स्थावर जंगम रुप जिते सब नाना भाँतिन रुप धरे हैं ।
ता महँ सच्चिदानंद प्रभु आतम एक प्रकाश करे है ।
सो विनु जाने ते सिंधु समान व जाने ते गो पद विंदु तरे है ।
बंदित ताहि सदा शुकदेव जो ब्रह्म चराचर रुप परे हैं ॥१॥

भाव है कि जिसने सच्चिदानंद परमात्मा का अनुभव किया उसके लिये यह संसार सागर गो के खुर के समान है और अज्ञानी के लिये समुद्र के समान है जिसे पार करना कठिन है ।

-: श्री सद्‌गुरु स्तुति :-

श्री सतगुरु सत ज्ञान निवासी । शांत स्वरूप सु परम प्रकाशी ॥१॥
दया निधान सकल गुण खानी । हरण त्रिताप और दिन दानी ॥२॥
दिनकरवत प्रकाशन हारे । तम अज्ञान को सबहि निवारे ॥३॥
चन्द्र समान जो शीतल ताई । वचन किरण सब ही सुखदाई ॥४॥
गंगावत निर्मल निदूंषण । सदा एक रस सम्यक पूरण ॥५॥
मन इच्छित फल के हो दाता । गुप्त प्रगट सबके विज्ञाता ॥६॥
जो जो उपमा संतन गाये । सो सब आपहि माहि समाये ॥७॥
आप कृपा सुख पाउ अनूपा । आप स्वयं आनन्द स्वरूपा ॥८॥
अब मेरी बिनती सुन लीजे । दीन जानि मोहि दर्शन दीजे ॥९॥
जग वारिधि अति देखि डराऊं । ताकर थाह कतहूं नहि पाऊं ॥१०॥
चरण अधार जानि तोहि ध्याऊं । व्यग्र देखि मोहि शरण लगाऊं ॥११॥
त्रिविध ताप जारे क्षण-क्षण में । शान्ति दान दीजे अब मन में ॥१२॥

पड़ा हुआ अज्ञान निशा में। निशि दिन भटकूं दशो दिशा में ॥१३॥
ज्ञान भान से दूर भगाओ। सत् विद्या का मार्ग लखाओ ॥१४॥
काम क्रोध मद मत्सर लोभा। करत रहत चित्त क्षण क्षण क्षोभा ॥१५॥
मन चंचल क्षण हूँ थिर नाही। भ्रमत रहत विषयन के मांही ॥१६॥
विविध भांति समझाऊँ ताही। पूर्व पाप बल मानत नाही ॥१७॥
अनरुचि तऊ करत बर जोरी। शुद्धहू चित्त को देत झकोरी ॥१८॥
कोटि उपाय ढूंढ़े जग माहीं। कोऊ उपाय न रोग नशाही ॥१९॥
वैद्यहू जग में ऐसे आही। रोग दिने दिन और बढ़ाही ॥२०॥
भक्षक तो चहूँ ओर लखाहो। रक्षक दीख परत कहूँ नाही ॥२१॥
वात पित्त कफ नाना रोगा। ये तन केर बहूत दुःख भोगा ॥२२॥
प्रारब्ध जानि मानि सुख सहऊं। मानस रोग नही सहि सकऊं ॥२३॥
हे प्रभु अब विलम्ब जनि लाओ। काम कला से वेगि बचाओ ॥२४॥
और जो अहै मोहादिक रोगा। इन हूक नाहि रहे संयोगा ॥२५॥
एक व्याधि वश जीव मरे हैं। ये असाध्य बहू व्याधि भरे हैं ॥२६॥
दीन बन्धु अब बेगि बचाओ। क्षमा विवेक विराग बढ़ाओ ॥२७॥
तुम बिन होहि न मोर उबारा। जग में कोइ न है रखवारा ॥२८॥
जो मेरे अवगुण करो विचारा। तो कल्पहूँ नहि होय उबारा ॥२९॥
या ते सब दुःख टारन हारे। करण हार सब दोष किनारे ॥३०॥
भूल चूक सब देउ मिटाई। निज चरणन में लो लिपटाई ॥३१॥
तुम चरणन को निशिदिन ध्याऊं दीन दास के आस पुराऊं ॥३२॥

साखी—हे प्रभु तव पद भक्ति बिना, फीका जप तप ध्यान।
यह निश्चित चित्त जानिके, तोहि चरण लपटान ॥ १ ॥
दीन सु दिन तब ही बने, धरो हाथ शिर मोय।
नाथ अनाथ सनाथ करू, विजय विजय तब होय ॥ २ ॥ इति ॥



॥ स्तुति परिशिष्ट प्रकरण ॥

शब्दार्थ:—१ श्री=सत प्रकाश से शोभा युक्त। सतगुरु = सतस्वरूप आत्मा को लखाने वाले। सत ज्ञान निवासी = सत स्वरूप में स्थिति। शांत स्वरूप = निर्विकार। परम प्रकाशी = परमानन्द रूप।

२—दयानिधान = प्राणी मात्र के ऊपर निग्रह करने वाले। हरण त्रिताप = दैहिक (देह के रोग) दैविक (अकस्मात उत्पात) भौतिक (भयानक जन्तु आदि से भय) इन तीन तापों से रक्षा करने वाले। दिन दानी=लग्नशील जिज्ञासुओं को बोध देने वाले हैं।

३—दिनकर......सूर्य के समान प्रकाश करनेवाले अर्थात जैसे सूर्य में भौतिक प्रकाश प्रचण्ड है तैसे आपमें आत्म प्रकाश प्रचण्ड है।

तम......जैसे सूर्य बाह्य अंधकार को दूर करता है तैसे आप हृदय के अंधकार को दूर करते हैं।

४—चन्द्र समान......चन्द्रमा की किरणें जैसे शीतल ताप नाशक व अल्हाद कारक हैं। वचन... तैसे आपके शब्द रूपी किरण शांति कारक रागद्वेषादि नाशक व परमानंद देने वाले हैं।

५—गंगावत=गंगा का जल जैसे मल रहित शुद्ध है तैसे आपका हृदय सम्पूर्ण दोषों से रहित निर्विकार है। सदा ... सर्वदा एक रस ज्ञान से परिपूर्ण है।

६—मन .... जिज्ञासुओं को मनोभिलषित फल को देने वाले हैं। गुप्त... तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सबको जानने वाले हैं।

७—जो-जो......सन्तो की सभी प्रशंसायें आप में मौजूद है।

८—आप ... सो आप ऐसी कृपा करें जिससे मैं परमानन्द प्राप्त करूं। आप......क्योंकि आप स्वतः परमानन्द स्वरूप है।

९—पुनि ...बार-बार यही प्रार्थना है कि मुझे। दीन......विरही जिज्ञासु के हृदय में आनन्द रूप से प्रत्यक्ष होवें।

१०--जग......संसार समुद्र देखकर मुझे धैर्य नहीं है। ताकर...... इसका पार कहीं नहीं देख रहा हूँ।

११--चरण......संसार सागर को पार करने के लिये आपके चरण कमल ही जहाज हैं, ऐसा समझकर आपके चरण कमल की शरण लेता हूँ। व्यग्र अति विह्वल समझकर मुझे शरण दें।

१२--त्रिविध......तीनों ताप सदैव ही हृदय को जला रहे हैं। (त्रिताप का अर्थ चौ० न० २ है।)

शान्ति ... इसलिये चित्त में शान्ति प्रदान करें।

१३--पड़ा हुआ......अज्ञान रूपी अन्धकार में पड़ा हुआ दिन रात सर्वत्र ठोकरें खा रहा हूँ।

१४--ज्ञान......ज्ञान रूपी सूर्य से इसे दूर कर (सत विद्या) ब्रह्म बोध के रास्ते पर लावें।

१५--काम......काम, क्रोध, मद, अभिमान और लोभ, ये सभी चित्त को सदैव चंचल किये रहते हैं।

१६--चित्त..... यह चंचल चित्त एक क्षण के लिये भी थिर नहीं होता और विषयों के बीच सदा भ्रमता रहता है।

१७--विविध......अनेकों तरह से उसे शांत करने की चेष्टा करते हैं, परन्तु पूर्व कुसंस्कार के बदौलत शांत नहीं होता।

१८--अनरूचि......यद्यपि मैं विषयों से उपराम रहता हूँ, फिर भी ये दुष्ट संस्कार शुद्ध हृदय को भी चंचल कर देते हैं।

१९--कोटि उपाय......चित्त शांत करने के लिये अनेकों उपाय ढूंढ़ मारे। किन्तु उपाय कामयाब नहीं हो सके।

२०--वैद्य हूँ... ..संसार में गुरु भी गुरुवा रूप ऐसे अन्धे हैं कि चित्त की चंचलता को और दिन-दिन बढ़ाते ही है।

२१--भक्षक..... ..शिष्य को सब प्रकार से लूटने वाले गुरुवा की भरमार है, किन्तु चित्त शांत करने वाले गुरु कहीं देखने में नहीं आते।

२२--वात पित्त……शरीर में वात पित्तादि अनेक रोग हैं जो शरीर को नाना कष्ट देते हैं।

२३--प्रारब्ध……इन सब दुःखों को मैं अवश्य होनहार समझकर खुशी से सह लेता हूँ। किन्तु मानस रोग बहुत असह्य मालुम पड़ता है।

२४—हे प्रभु……इससे हे स्वामी! अब विलम्ब मत करें, काम के फन्दे से जल्द बचायें।

२५--और……इसके अलावे और जो मोहादिक रोग हैं इन सबों का नाश हो।

२६--एक……क्योंकि जीव एक ही रोग से मर जाता है, और ये अनेकों रोग भरे पड़े हैं।

२७--दीन बन्धू……इसमें हे दीन दयाल! अब जल्दि से इन रोगों से मुक्त करें, तथा क्षमा, विवेक, वैराग्यादि दैवी सम्पदा की वृद्धि करें।

२८--तुम……आपके बिना मेरा उद्धार नहीं है। दूसरा मेरा संसार में रक्षक नहीं है।

२९--जो मेरे ……अगर आप मेरे अवगुण का विचार करेंगे तो कल्पों में मेरा उद्धार नहीं होगा।

३०--याते……इसलिये मेरे सभी दुःख और दोषों को दूर करने वाले हमारे सभी।

३१--भूल चूक मिटाकर अपने चरण शरण में लगा लें।

३२--आपके चरणों का दिन रात ध्यान करता हूँ। मुझ दीन दास की आशा को पूर्ण करें।

साखी—हे … हे प्रभु आपके चरण कमल के भक्ति बिना सभी जप तप बेकार है, यह मन में निश्चित करके आपके चरण की शरण में आ पड़ा हूँ। दीन……मुझ दीन हीन का कल्याणमय समय तभी होगा जब कि वरदहस्त मेरे शिर पड़ेगा अर्थात् जब आपकी हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त होगी तभी मैं परमानन्द को प्राप्त हो जाऊँगा। इसलिए हे स्वामी मुझ अनाथ को सनाथ करें जिससे

मैं परमानन्द को प्राप्त हो जाऊँ। विजय... ...मेरा विजय नाम तब ही शोभेगा जब कि आपकी हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त होगी, इसलिए मुझ अनार्थ को सनाथ करें जिससे नकली विजय असली विजय हो सके।

सम्पादक की ओर से—

आत्म तत्व निष्ठ महात्मा श्री विजयदास जी साहब एक विज्ञ और विरागी वयो वृद्ध महापुरुष हैं। आपने यह "बीजक वित्त सारांश" नामक लघु ग्रन्थ जिज्ञासुओं के मार्गदर्शनार्थ प्रस्तुत कर अत्यन्त स्तुत्य कार्य किया है। आपके साक्षात् सम्पर्क में आनेवाले जानते हैं कि आपके सांन्निध्य में उन्होंने किस अवर्णनीय शांति का लाभ किया।

आपने सद्गुरु की स्तुति तथा ज्ञान योग परक भजन, भावार्थ सहित लिखकर जिज्ञासु जनों के लिए सरलता पूर्वक मोह निवृत्ति का मार्ग खोल दिया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस लघु ग्रन्थ का समाज में बहुत ही समादर होगा और जिज्ञासु एवं अभ्यासु इससे लाभ उठायेंगे। ग्रन्थ सारांश रूप होने से अनेक प्रकरणों पर पूर्ण प्रकाश नहीं डाला जा सका है फिर भी संक्षेप में ही गागर में सागर भरने का प्रयास किया गया है। महात्मा श्री विजयदासजी साहब धन्य धन्य हैं। उनके चरणों में सविनय बारंबार वन्दगी है।

जगदीशदास शास्त्री



॥ उपसंहार ॥

दोहा--वीजक बताता वित्त को, जो वित्त गुप्त होय ।

करि मंथन संग्रह किया, वित्त सारांश में सोय ॥ १ ॥

निशिदिन पग बन्धन करूं, ज्ञानी ब्रह्माकार ।

जो कुछ मै संग्रह किया, तिनके कृपा अधार ॥ २ ॥

सब सन्तन पग शोश धरि, वन्दूं बारम्वार ।

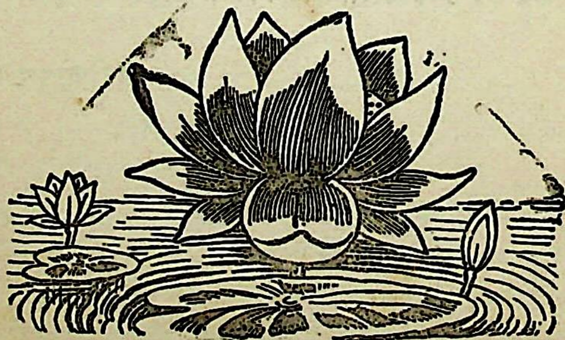
भूल चूक जो कुछ रहा, सो सब लेहु सुधार ॥ ३ ॥

सीतामढ़ो जिला अहै, अहो विष्णुपुर ग्राम ।

डाक वहां पुनि जानिये, विजय दास मम नाम ॥ ४ ॥

ऋतु६ गुण३ नभ पुनि अयन थे, संवत लेहु पिछान ।

कृष्ण पंचमी चन्द्र दिन, माघ मास शुभ जान ॥ ५ ॥



॥ भजन ॥

सन्तो सहज समाधि भली,
जब से कृपा भई सतगुरु की, सुरति न अनत चली ॥ टेक
आँख न मूदूँ कान न रूंधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन हँस-हंसकर देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ ॥ १ ॥
कहूँ सो नाम सुनूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गृह बन खंड एक सम लेखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा ॥ २ ॥
जहँ-जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा ॥ ३ ॥
शब्द निरन्तर मनुआँ राता, मलिन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहुँ न बिसरे, ऐसी तारी लागी ॥ ४ ॥
कहैं कबीर यह उन्मनी रहनी, सो परगट कर गाई।
सुख दुख से वह परे परम पद, तहँ मैं रहा समाई ॥ ५ ॥

संत सद्गुरु कबीर साहब

मूल्य—पाँच रुपये मात्र